रामायण

भ्रान्तियाँ और समाधान

आर्य प्रकाशन मंडल
सरस्वती भण्डार, गांधी नगर, दिल्ली-110031

समीक्षा के लिए

रामायण

भ्रान्तियाँ और समाधान

स्वामी विद्यानंद सरस्वती

प्रकाशक
आर्य प्रकाशन मंडल
सरस्वती भंडार, गांधीनगर
दिल्ली-110031

द्वितीय संस्करण
1996

आवरण
चेतनदास

मूल्य
पचहत्तर रुपये

मुद्रक
एस०एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

RAMAYAN : BHRANTIYAN AUR SAMADHAAN(Hindi)
by Swami Vidhya Nand Saraswati
Price : Rs. 75.00

गज उज्जहार



स्मृतिशेष दीप्ति (सोनू)

जिसे 18 वर्ष की अल्पायु में ही
कराल काल ने सहसा उठा लिया

जन्म : 3 मार्च, 1975 मृत्यु : 30 सितम्बर, 1993

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्री ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा हन्त ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार ॥

रात्रि समाप्त होगी, प्रातःकाल होगा, सूर्य उदय होगा और कमल खिलेंगे (और इस प्रकार मैं मुक्त हो जाऊँगा)। कली के भीतर बन्द भौंरा इस प्रकार सोच रहा था। हा शोक ! महाशोक ! इतने में एक हाथी आया और कमल को तोड़कर निगल गया।

कुमारी दीप्ति शर्मा—एक परिचय

सन् 1963 में दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में आयोजित एक समारोह में प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के सान्निध्य में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की छात्रा सुषमा दीक्षित (सुपुत्री प्रिंसिपल लक्ष्मीदत्त दीक्षित—वर्तमान स्वामी विद्यानन्द सरस्वती) के भाषण से राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन इतने अभिभूत हुए कि कार्यक्रम की समाप्ति पर उसके साथ बातों में व्यस्त चलते-चलते वहाँ तक पहुँच गये जहाँ वह ठहरी हुई थी। संयोगवश अगले ही वर्ष इसी प्रकार के एक समारोह में प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री के सान्निध्य में हुए उसके भाषण को सुनकर विदेशमन्त्री एम०सी० छागला इतने प्रभावित हुए कि गद्‌गद होकर बोले "I wish, you were in Parliament." ऐसी असाधारण योग्यता वाली माँ (अब प्रोफेसर डा० सुषमा शर्मा) की कोख से 3 मार्च सन् 1975 को ब्राह्मवेला में कवि-कल्पना-सी कोमल जिस हिमानी गौरा बालिका ने जन्म लिया उसकी दीप्ति से सारा घर जगमगा उठा। इसी से वह दीप्ति नाम से अभिहित हुई। पिता श्री हरिश्चन्द्र शर्मा (स्वर्ण पदक से सम्मानित) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (I.F.C.I.) में उच्च पदाधिकारी हैं। समय-समय पर स्थानान्तरित होते रहने के कारण ऐसे लोगों की सन्तान की शिक्षा में बड़ा व्यवधान पड़ता है। परन्तु पैतृक संस्कारों से युक्त दीप्ति ने इसे अपनी प्रगति में कभी बाधक नहीं बनने दिया। जहाँ भी पहुँचती दो-तीन मास में सबको पछाड़कर प्रथम स्थान प्राप्त कर लेती। और वहाँ से आगे जाते समय अपने बहु-आयामी व्यक्तित्व की झलक दिखाकर अपना प्रभा-मण्डल छोड़ जाती। वक्तृत्वकला, संगीत शास्त्र, काव्यरचना तथा नेतृत्व आदि अनेक गुणों की स्वर्ण-मंजूषा थी नन्हीं-सी दीप्ति। जो एक बार मिलता, उसका बन कर रह जाता।

कहते हैं कि प्रायः सिफ़ारिश या 5 से 10 लाख के बीच डोनेशन दिए बिना मेडिकल कालिज में प्रवेश नहीं मिलता। पर दीप्ति को घर बैठे मात्र योग्यता (Merit) के आधार पर गवर्नमेंट मेडिकल कालिज सूरत में प्रवेश मिल गया। यहाँ तक दीप्ति का पुरुषार्थ काम देता रहा। पुरुषार्थ उसके वश में था। अब प्रारब्ध का खेल शुरू हुआ जिस पर उसका कोई अधिकार नहीं था। कालिज में पहुँचे अभी एक सप्ताह हुआ था कि वह अस्वस्थ हो गई। तीन दिन में जब हालत बिगड़ने लगी तो उसे बम्बई लाकर वहाँ के नानावती हास्पिटल में प्रविष्ट करा दिया गया। वहाँ पता चला कि गलत इलाज के कारण अब बचने की कोई

आशा नहीं रह गई है। मेडिकल कालिज के डाक्टर अपनी छात्रा के रोग का निदान ठीक नहीं कर पाये, इसे विधि के विधान के सिवा क्या कहा जा सकता है? एक सप्ताह तक दीप्ति अपनी इच्छा-शक्ति से और डाक्टर अपने आयुर्विज्ञान के बल पर मृत्यु से जूझते रहे। पर किसी की न चली। और 30 सितंबर 1993 को जब आकाश में सूर्य अपनी पूर्ण दीप्ति के साथ चमक रहा था, धरती पर दीप्ति के प्रियजन विवश खड़े, रोते-बिलखते उसे बुझते देख रहे थे—

She was dying,
But did she care ?
It was the cruel pain,
She could not bear,
Don't be cruel, O Lord up there,
Give her death, that you spare.
The Lord obliged.
Her soul flew,
Leaving questions to answer.

—दीप्ति की स्वरचित कविता से

दीप्ति की विलक्षण प्रतिभा अभी अंकुरित और पल्लवित हुई थी। उसे पुष्पित होकर फलीभूत होना था। किन्तु विधाता को यह स्वीकार न था। इसलिए सबकी लाड़ली दीप्ति अपनी रश्मियों को समेट, समस्त आशा-आकांक्षाओं को सँजोये, अपनी मधुर स्मृति की अमिट छाप छोड़ कर अनन्त में लीन हो गई।

आमुख

भारत का गौरवपूर्ण इतिहास जिन ग्रन्थों में आज भी सुरक्षित है, उनमें रामायण और महाभारत मुख्य हैं। जितना प्राचीन यह देश है उतना ही प्राचीन और विस्तृत इस देश का साहित्य और संस्कृति है। यहाँ समय-समय पर अनेक महापुरुषों का जन्म हुआ है। परन्तु जिन दो महापुरुषों के जीवन ने भारत के इतिहास, संस्कृति, साहित्य और उसकी परम्पराओं को सबसे अधिक प्रभावित किया है, वे ये मर्यादापुरुषोत्तम राम तथा योगेश्वर कृष्ण।

श्रीराम को माध्यम बना कर रचा गया भारतीय तथा कुछ हद तक विदेशी साहित्य भी बड़ा विशाल है। उस सबका उपजीव्य है महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण। वाल्मीकि भारत के ही नहीं, विश्व के आदि कवि हैं। इसलिए तद्रचित रामायण को भी आदि काव्य माना जाता है और विश्व के गौरव-ग्रन्थों में उसका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया जाता है। रामकथा रामायण तक ही सीमित नहीं रही। महाभारत में भी रामकथा वर्णित है। उसमें चार स्थल ऐसे हैं जहाँ रामकथा उपलब्ध है—रामोपाख्यान, आरण्यकपर्व, द्रोणपर्व तथा शान्तिपर्व। इनमें विशेषतया रामोपाख्यान विद्वानों के अध्ययन का विषय रहा है।

बौद्ध साहित्य में भी रामकथा का वर्णन हुआ है। वहाँ जातक कथाओं में रामकथा से संबन्धित दशरथजातक, अनामकजातक और दशरथकथानक नामक तीन जातक कथाएँ उपलब्ध हैं। पर इन तीनों जातकों की घटनाएँ रामायण से भिन्न हैं। जैन परम्परा में रामकथा के मुख्य ग्रन्थ हैं—विमलसूरिकृत पउमचरित (प्राकृत), रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण (संस्कृत), स्वयम्भूकृत पउमचरिउ (अपभ्रंश), रामचन्द्रचरित पुराण तथा गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (संस्कृत)। जैन परम्परा के अनुसार राम का मूलनाम 'पद्म' था। बौद्ध साहित्य की अपेक्षा जैन साहित्य में रामकथा का अधिक विस्तार हुआ है। जैन आचार्यों ने रामकथा को अपने धर्म के विशिष्ट दर्शन, साधना, उपासना के सिद्धान्तों से अनुप्राणित कर प्रस्तुत किया है।

विविध भारतीय भाषाओं में भी रामकथा लिखी गई। उदाहरणार्थ—मराठी में आठ, तेलगू में पाँच, तमिल में बारह, हिन्दी में ग्यारह, बँगला में पच्चीस और उड़िया में छह रामायणें हैं। (हिन्दी विश्वकोष, 'रामायण' शब्द)। छोटी-छोटी रामायणें तो न जाने कितनी हैं। इनमें गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस का विशेष स्थान है। विदेशों में भी रामकथा भिन्न-भिन्न रूपों

में प्रचलित है। रामकथा की लोकप्रियता का श्रेय उतना उसके लेखकों को नहीं, जितना स्वयं राम को है। राम का नाम प्रत्येक भारतीय (चाहे वह कहीं भी बसा हो) के मन में ओत-प्रोत है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है॥

वाल्मीकि के सभी चरित्र मानवीय धरातल पर हैं। श्रीराम का संपूर्ण जीवन आदर्श मानव या मर्यादा पुरुषोत्तम का जीवन है। राम का आदर्श चरित्र वर्णन ही वाल्मीकीय रामायण का उद्देश्य है, उनके देवत्व की स्थापना करना नहीं। बालकाण्ड के आरम्भ में ही वाल्मीकि नारदमुनि से पूछते हैं—

कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः॥

इस समय लोक में ऐसा कौन व्यक्ति है जो उत्तम गुणों से युक्त, पराक्रमी, धर्म को जानने वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़व्रती है। कौन उत्तम चरित्र वाला है, कौन सब प्राणियों का हितैषी है, कौन विद्वान्, शक्तिशाली और प्रियदर्शन है? वाल्मीकि ने यह जिज्ञासा नारदमुनि से इसलिए की थी, क्योंकि वे समझते थे कि घुमक्कड़ प्रकृति के होने के कारण नारद ऐसे मनुष्य को अवश्य जानते होंगे। इतना ही नहीं, नारद से उत्तर पाने के लिए उन्होंने प्रशंसात्मक शब्दों में कह भी दिया—"महर्षे! त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्।" देवलोक में यदि किसी लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की कल्पना की जायेगी तो वहाँ की मन्त्रिपरिषद् में सूचना तथा प्रसारण मन्त्री (Minister for Information and Broadcasting) के रूप में नारद से अधिक योग्य अन्य कोई नहीं मिलेगा। नारद बोले—

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥

हे मुनिवर! आपने जो बहुत-से गुण कहे हैं, वे दुर्लभ हैं। फिर भी मैं विचार कर कहता हूँ। इन दुर्लभ गुणों से युक्त मनुष्य के विषय में सुनो—"वह इक्ष्वाकु-वंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः" इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न लोगों में राम नाम से प्रसिद्ध है। इतना कहकर नारदमुनि ने श्रीराम के अलौकिक गुणों की तालिका प्रस्तुत कर दी। परन्तु सब कुछ कहने के साथ वे यह कहना नहीं भूले—'तैर्युक्तः श्रूयतां नरः'। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि ने भी विशिष्ट गुणों से युक्त

'नर' (मनुष्य) के विषय में पूछा था और नारद ने भी 'नर' (मनुष्य) के विषय में ही अपेक्षित जानकारी दी थी। नारायण का वहाँ कोई प्रसंग नहीं था। वाल्मीकि के राम में यद्यपि उत्कृष्ट शारीरिक सौन्दर्य, महान् बल-पराक्रम, असीम करुणा, दया और शरणागतवत्सलता आदि गुण हैं, तथापि उन्होंने यथावसर उनकी मानवसुलभ दुर्बलताओं को छिपाने का प्रयास नहीं किया। वाल्मीकि के राम नरों में नरोत्तम हैं, पर नारायण नहीं; पुरुषों में पुरुषोत्तम हैं (उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः—गीता) पर परमेश्वर नहीं। रामकथा के बीच में समय-समय पर वाल्मीकि इसका स्मरण कराते चलते हैं। संसार राम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के नाम से जानता है और इसलिए उन्हें आदर्श पुरुष के रूप में स्वीकार करके उनके चरित्र को अनुकरणीय मानता है। राम को ही नहीं, राजा राम के राज्य को भी आदर्श कल्याणकारी राज्य (Ideal welfare state) का पर्याय मानता है।

वाल्मीकि ने राम को 'वेदवेदांगतत्त्वज्ञ' तथा 'शास्त्रार्थतत्त्वज्ञ' बतलाया है। धर्माधर्म का निश्चय करने के विषय में राम वेद के बाद मनुस्मृति को प्रमाण मानते थे। बालिवध के प्रसंग में उन्होंने अपने शास्त्रज्ञान का लाभ उठाया। जब बालि ने राम के द्वारा अपने मारे जाने पर (विशेष रूप से राम के उसे छिप कर मारने पर) आपत्ति की तो राम ने मनुस्मृति को याद किया और कहा—

> श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।
> गृहीतौ धर्मकुशलैस्तत्तथा चरितं म याहरे॥
>
> —कि० का० 18/30-31

> गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
> आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥
> नाततायि वधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन्।
> प्रकाशं वा ऽ प्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति॥
>
> —मनु० 8/350-51

सदाचार रक्षा के सम्बन्ध में भगवान् मनु ने दो श्लोक लिखे हैं। धार्मिक लोगों ने उनका अनुसरण किया है, मैंने भी वही किया है। तदनुसार आततायी को मारने में कोई दोष नहीं होता, चाहे उसे प्रत्यक्ष मारा जाये, चाहे छिप कर मारा जाय।

राम दिग्विजयी थे, किन्तु साम्राज्यवादी नहीं। कालिदास ने रघुवंश में रघुकुल की परम्परा का विवेचन करते हुए लिखा है—"आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव" अर्थात् जिस प्रकार मेघ पृथिवी से जल लेकर वर्षा द्वारा उसी को लौटा देते हैं, उसी प्रकार सत्पुरुषों का लेना भी देने=लौटाने के लिए होता है।

इसी नीति का अनुसरण करते हुए बालि से किष्किन्धा का राज्य जीत कर, अपने राज्य में न मिला कर, उसके भाई सुग्रीव को दे दिया और लंका पर विजय प्राप्त करके उसका राज्य रावण के भाई विभीषण को सौंप दिया।

जब भरत राम को वन से अयोध्या लौटाने के लिए वन में गये तो श्रीराम ने कुशल-प्रश्न के बहाने भरत को राजनीति का उपदेश दिया, वह प्रत्येक राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री के लिए सदैव स्मरणीय व अनुकरणीय है। राम भरत से पूछते हैं—

1. क्या तुम सहस्रों मूर्खों के बदले एक विद्वान् के कथन को अधिक महत्त्व देते हो ?

2. क्या तुम जो व्यक्ति जिस कार्य के योग्य है उससे वही काम लेते हो ?

3. तुम्हारे कर्मचारी बाहर-भीतर पवित्र हैं न ? वे किसी से घूस तो नहीं लेते ?

4. यदि धनी और निर्धन में विवाद हो, और वह विवाद न्यायालय में विचाराधीन हो, तो तुम्हारे मन्त्री धन के लोभ में आकर उसमें हस्तक्षेप तो नहीं करते ?

5. तुम्हारे मन्त्री और राजदूत अपने ही देश के वासी अर्थात् अपने देश में उत्पन्न हुए हैं न ?

6. क्या तुम अपने कर्मचारियों को उनके लिए नियत वेतन व भत्ता समय पर देते हो ? देने में विलम्ब तो नहीं करते ?

7. क्या राज्य की प्रजा कठोर दण्ड से उद्विग्न होकर तुम्हारे मन्त्रियों का अपमान तो नहीं करती ?

8. तुम्हारा व्यय कभी आय से अधिक तो नहीं होता ?

9. कृषि और गोपालन से आजीविका चलाने वाले लोग तुम्हारे प्रीतिपात्र हैं न ? क्योंकि कृषि और व्यापार में संलग्न रहने पर ही राष्ट्र सुखी रह सकता है।

10. क्या तुम वेदों की आज्ञा के अनुसार काम करने में सफल रहते हो ?

11. मिथ्या अपराध के कारण दण्डित व्यक्तियों के जो आँसू गिरते हैं, वे अपने आनन्द के लिए शासन करने वाले राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं।

इस सबसे जहाँ रामकथा का विस्तार हुआ वहाँ उसका स्वरूप भी बिगड़ता गया। 'जितने मुँह उतनी बातें'। जितने रचयिता उतने ही रामकथा के रूप। राम और सीता को सहोदर भाई-बहन के रूप में ही नहीं, सीता को रावण की पुत्री के रूप में भी प्रस्तुत किया गया। राम के अद्वितीय एवं अलौकिक (असाधारण) कार्यों के कारण जहाँ एक ओर उन्हें ईश्वर बना दिया गया वहाँ

दूसरी ओर उनकी ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया गया। पञ्चतन्त्र की कहानी के चूहों, खरगोशों, कछुओं, गीदड़ों, सिंहों, बैलों आदि की तरह रामायण के पात्रों को भी बन्दरों, गिद्धों, रीछों और गिलहरियों का रूप दे दिया गया। रामकथा की कथावस्तु, घटनाक्रम आदि में न एकरूपता रही और न कोई तारतम्य रहा। धीरे-धीरे उसकी ऐतिहासिकता नष्ट हो गई। परिणामतः यह कहा जाने लगा कि रामायण अथवा रामकथा का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है, उपन्यास की भाँति वह एक कल्पित कथा है जिसमें तिलस्म और जासूसी का बाहुल्य है।

हमारे देश में सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रतिष्ठित वाल्मीकि रामायण तथा तुलसीकृत रामचरितमानस हैं। पर उनका भी अधिकांश एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है। दोनों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ तुलसी के राम साक्षात् परमेश्वर हैं, वहाँ वाल्मीकि के राम पुरुषोत्तम होते हुए भी पुरुष हैं—नर हैं, नारायण नहीं। वाल्मीकि के चरितनायक रघुकुलतिलक दशरथनन्दन मर्यादापुरुषोत्तम राम हैं जिनका समस्त व्यवहार व कार्यकलाप मनुष्योचित है। परन्तु वर्तमान में उपलब्ध वाल्मीकि रामायण में जो कुछ है उसकी याथातथ्यता भी अनेकत्र सन्दिग्ध है। उसे ज्यों का त्यों वाल्मीकिरचित नहीं माना जा सकता।

वास्तव में हमारे वैदिक तथा लौकिक साहित्य में वेदों को छोड़कर अन्य सभी ग्रन्थों में न्यूनाधिक प्रक्षेप होता रहा है। वाल्मीकि रामायण भी उसका अपवाद नहीं है। तथापि रामकथा अपने मूलरूप में जितनी वाल्मीकि रामायण में सुरक्षित है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। खोजने पर सत्यकथा के सूत्र उसी में मिल सकते हैं जिन्हें बुद्धिपूर्वक जोड़कर मूल कथा को प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु संस्कृत से अनभिज्ञ होने और वाल्मीकि रामायण का अधिक प्रचार न होने से किंवदन्तियों के आधार पर, किन्तु रामायण के नाम पर, यत्र-तत्र-सर्वत्र रामायण की घटनाओं का विकृत रूप में प्रचार-प्रसार हो रहा है। ऐसी अनेक बातें हैं जिनको लोग कहते और मानते हैं, किन्तु जो वर्तमान में प्रचलित रामायण में भी नहीं है। फिर उनके वाल्मीकिकृत रामायण में रहे होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उनका आधार केवल लोक का गतानुगतिक होना है।

कुछ भ्रान्तियाँ ऐसी हैं जो अन्यथा निर्दोष प्रतीत होने पर भी तथ्य के विपरीत होने से इति-ह-आस की कोटि में न आने से उपेक्षणीय नहीं हैं। परन्तु कुछ ऐसी निराधार बातें भी हैं जो रामायण के पात्रों, विशेषतः श्रीराम, को कलंकित करने के अतिरिक्त सारे समाज और देश के लिए अभिशाप बन गई हैं। उदाहरणार्थ—न राम ने कभी सीता का परित्याग किया और न वाल्मीकि ने ऐसा लिखा। इसी प्रकार न राम ने तपस्या करते शम्बूक का वध किया और न वाल्मीकि ने ऐसा लिखा। किन्तु वर्तमान में उपलब्ध रामायण में ऐसा लिखा होने से राम को स्त्रियों तथा शूद्रों पर अत्याचार करने के लिए दोषी ठहरा दिया गया। पहले यह

बात थोड़े-से लोगों को मालूम थी। किन्तु अब दिन-रात प्रचार माध्यमों (पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन, आकाशवाणी आदि) तथा निहित स्वार्थों के कारण राज-नीतिक दलों के प्रचार के कारण यह बातें जगजाहिर हो गई हैं। ऐसी कतिपय भ्रान्तियों का निराकरण करने के लिए ही यह छोटी-सी पुस्तक लिखी गई है। यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह अन्तिमेत्थम् के रूप में न होकर अध्येताओं के विचारार्थ है। लेखक का उसके प्रति कोई आग्रह नहीं है।

डी 14/16 माडल, टाउन दिल्ली
रामनवमी
चैत्र शुक्ला नवमी संवत् 2050 वि०

—दिव्यानन्द सरस्वती

क्रम

वाल्मीकि रामायण

पुराण मुख्यतः पाँच विषयों के प्रतिपादक होते हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

इतिहासों में इस प्रकार प्रतिपाद्य विषय सीमाबद्ध नहीं होता। वे नानार्थ-प्रतिपादक होते हैं। पुराणापेक्षया इतिहास का महत्त्व 'इतिहासपुराणं पञ्चमम्' 'इतिहासपुराणाभ्याम्' इस प्रकार के नामनिर्देशों से ही मालूम हो जाता है। 'इतिहासपुराण' यह समस्त पद है। इतिहास शब्द की अपेक्षा पुराण शब्द में कम 'अच्' अक्षर हैं। अतएव 'अल्पाच्तरं पूर्वम्' इस व्याकरण-विधि के अनुसार पुराण शब्द इतिहास शब्द से पहले आना चाहिए, पर आया है पीछे। इसका कारण इतिहास का श्रेष्ठत्व है, क्योंकि 'अभ्यर्हितं पूर्वम्' इस दूसरी व्याकरण विधि के अनुसार अधिक 'अच्' वाला होने पर भी अभ्यर्हित (श्रेष्ठ) का नाम पहले आ सकता है। इस विधि के अनुसार 'इतिहासपुराणाभ्याम्' इस प्रकार निर्देश हुआ है। इससे स्पष्ट है कि पुराण की अपेक्षा इतिहास का आसन ऊँचा है।

वाल्मीकि आदिकवि कहलाते हैं—'आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्'। परमेश्वर के लिए भी 'कविर्मनीषी' पद का प्रयोग हुआ है और 'पश्य देवस्य काव्यम्' इस प्रकार वेद को भी काव्य कहा गया है। पर रामायण आदि-काव्य शायद इसलिए है कि तब तक वेद को छोड़कर संस्कृत की व्यावहारिक भाषा में अन्य कोई छन्दोबद्ध रचना नहीं थी। वस्तुतस्तु ईश्वर के अनादि होने से वेद तो अनादि है। वाल्मीकि रामायण काव्य होने के साथ-साथ इतिहासग्रन्थ भी है। वेद में ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए इति-ह-आस कहा जा सके, क्योंकि वह कालातीत है।

वाल्मीकि रामायण को छोड़कर रामकथा सम्बन्धी जितने भी ग्रन्थ हैं, उन सबमें बलपूर्वक यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि रामचन्द्र जी के जन्म से 14 हज़ार वर्ष पूर्व रामायण की रचना हो चुकी थी जिसका समर्थन कथोपकथन के रूप में कहीं याज्ञवल्क्य द्वारा, कहीं शंकर द्वारा और कहीं काकभुशुण्डी द्वारा कराया गया है।

परन्तु वाल्मीकि रामायण की रचना पौराणिक मान्यता के अनुसार 14

हजार वर्ष पूर्व न होकर रामचन्द्र जी के जीवनकाल में ही हुई थी, इसमें स्वयं वाल्मीकि रामायण की अन्तः-साक्षी उपलब्ध है। बालकाण्ड, सर्ग 4 के प्रथम श्लोक में कहा है—

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥

राज्य प्राप्त कर सिंहासन पर बैठने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम के विचित्र पद—अर्थयुक्त संपूर्ण चरित की रचना महर्षि वाल्मीकि ने की।

इस पर रामायण, महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों के टीकाकार प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा की टिप्पणी है—"इस श्लोक से स्पष्ट है कि यह इतिहास राम के समकालीन कवि की रचना है।"

इसमें रामायण के सबसे पहले दो श्लोक भी प्रमाण हैं। जब महर्षि वाल्मीकि की देवर्षि नारद से भेंट हुई तो—

तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्॥
कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥ बाल० 1/1-2

तप और स्वाध्याय में निरत (निरन्तर लगे हुए), वाणी के जानने वालों में श्रेष्ठ और मुनियों में उत्तम नारद से तपस्वी वाल्मीकि ने पूछा—"इस समय संसार में उत्तम गुणों से युक्त, पराक्रमी, धर्म को जानने वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़व्रती कौन है ?" ऐसे गुणों से युक्त व्यक्ति की जिज्ञासा के उत्तर में नारद ने 'इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न कौशल्यानन्दन राम' का नाम प्रस्तुत किया। 'कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके' (इस समय संसार में) में आया 'साम्प्रतम्' शब्द स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि रामायण में जिस व्यक्ति का वर्णन किया गया है, वह निश्चित रूप से वाल्मीकि का समकालीन है। तत्पश्चात् कविवर ने रामायण को जिस घटनाक्रम में प्रस्तुत किया है, उसमें सर्वत्र भूतकाल की क्रिया का ही प्रयोग किया गया है, कहीं भी भविष्यत् काल की क्रिया देखने में नहीं आती।

वाल्मीकि के मन में जिस प्रकार रामायण रचने का विचार उत्पन्न हुआ, जैसी-जैसी उनको प्रेरणा हुई और जिस प्रकार उसका प्रचार हुआ, यह सब रामायण के आरम्भ में दे दिया गया है। 'परिपप्रच्छ वाल्मीकिमुनिः' (1/1), 'चकार काव्यमुदारधीर्मुनिः', 'रघुवीरचरितं मुनिप्रणीतं निशामयध्वम्' (2/43), 'चकार कृत्स्नं वाल्मीकिर्भगवानृषिः' इत्यादि वाक्यों में सर्वत्र वाल्मीकि और तत्सम्बन्धी क्रियापदों का प्रथम पुरुष में प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि यह सब वाल्मीकिमुनि की रचना नहीं है। वस्तुतः वाल्मीकि मुनिकृत रामायण पाँचवें सर्ग से आरम्भ होती है। इससे पहले के चार सर्ग सम्पादकीय प्रस्तावनारूप हैं।

रामायण में प्रक्षेप

जनता द्वारा मान्य एवं प्रतिष्ठित प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों में साम्प्रदायिक मतों की पुष्टि में समय-समय पर श्लोकों का प्रक्षेपण किया जाता रहा है। इसी कारण महाभारत का कलेवर आज एक लाख से अधिक श्लोकों का हो गया है। महाभारत के अन्तर्गत अवसर और प्रकरण को देखते हुए मूल गीता में 60-70 श्लोकों से अधिक की गुंजायश नहीं बनती। परन्तु भिन्न-भिन्न विचारधारा के लोग अपने-अपने मत के पोषक श्लोक बनाकर डालते गये और उनकी संख्या सात सौ से अधिक हो गई। यही स्थिति वाल्मीकि रामायण की भी है। परन्तु उसमें प्रक्षेपण के साथ-साथ निष्कासन भी हुआ है। उदाहरणार्थ—बालकाण्ड में जहाँ राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन किया गया है, वहाँ पुत्रेष्टि यज्ञ सम्बन्धी सारे प्रकरण को निकालकर अश्वमेध यज्ञ को डाल दिया गया है जिसका वहाँ कोई प्रसंग ही नहीं है। इन दोनों का कोई अङ्गाङ्गी भाव भी नहीं है, क्योंकि ये दोनों यज्ञ एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। अनेक स्थल सृष्टि-नियम के विरुद्ध, असंभव तथा अप्रासंगिक होने से प्रक्षिप्त हैं। ऐसे सभी प्रसंग कालान्तर में पुराणों से लिए गये हैं जो ऋषि प्रणीत नहीं हो सकते।

बौद्धमत—अयोध्याकाण्ड में लिखा है—

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्याद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात्॥
109/34

जैसे चोर होता है वैसे ही तथागत बुद्ध या बौद्ध मतावलम्बी होता है। इसी प्रकार और नास्तिक (चारवाक आदि) को भी जानो। प्रजा का हित चाहने वालों को इन सबको दण्डित करना चाहिए। यदि यह संभव न हो तो विद्वान् ब्राह्मण उनसे विमुख रहे और वार्तालाप न करे।

रामायण काल में बौद्धमत या किसी भी नास्तिक मत का अस्तित्व नहीं था। इसलिए यह श्लोक रामायण में बौद्धमत के प्रादुर्भाव के बाद किसी बौद्धमत विरोधी द्वारा प्रक्षिप्त है। बालकाण्ड 4/2 के अनुसार—

चतुर्विंशतिसहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः।
ततः सर्गशतान् पञ्च षट् काण्डानि तथोत्तरम्॥

रामायण का निर्माण 24 हज़ार श्लोकों के पाँच सौ सर्गों और 6 काण्डों में हुआ कहा गया है। परन्तु वर्तमान में प्रचलित प्रायः सभी रामायणों में पाँच सौ के स्थान पर 658 सर्ग, छह के स्थान पर सात काण्ड और 24 हज़ार के स्थान में लगभग 25 हज़ार श्लोक मिलते हैं। इस प्रकार सर्वत्र बढ़ी हुई यह संख्या समय-समय पर हुए प्रक्षेपों को प्रमाणित करती है।

युद्धकाण्ड के अन्तिम 131वें सर्ग में बाल्मीकि रामायण की फलश्रुति का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा है—

आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्···। 107
शृणोति य इदं काव्यमार्षं वाल्मीकिना कृतम्···। 112
श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति···। 111
पूजयंश्च पठंश्चेममितिहासं पुरातनम्···। 116

जिस प्रकार 'अदस्' परोक्ष का वाचक है, 'इदम्' प्रत्यक्ष या वर्त्तमान का संकेत करता है। फलश्रुति में 'शृणोति य 'इदं' काव्यं वाल्मीकिना कृतम्' से स्पष्ट है कि वाल्मीकि कृत रामायण 'यहाँ' पूरी हो चुकी। वाल्मीकि ने जिस रामायण की रचना की थी उसके विषय में लिखा है—

स यथा कथितं पूर्वं नारदेन महर्षिणा।
रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान् ऋषिः॥ बाल० 3/9

रामचरित को जैसा नारद जी ने कहा था, वैसा ही भगवान् ऋषि (वाल्मीकि) ने रच दिया। नारद जी ने जो कुछ कहा था, उसका पहला श्लोक इस प्रकार है—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् बशी॥ बाल० 1/8

इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न लोगों में एक ऐसे हैं जो राम नाम से विख्यात हैं, वे मन को बश में रखने वाले, महा बलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं।

कथावस्तु की समाप्ति करते हुए कहा गया है—

नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः।
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनराप्तवान्॥ बाल० 1/89

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत्॥
युद्ध० 128/106

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥

निष्पाप रामचन्द्र जी ने नन्दिग्राम में, अपनी जटा कटवा कर भाइयों के साथ, सीता के पाने के अनन्तर पुनः अपना राज्य प्राप्त किया। रामचन्द्र जी ने भाइयों सहित दस हज़ार (सहस्र शब्द अनेक और असंख्यात वाचक है) वर्षों तक राज्य किया और राज्य करके परमधाम को सिधारे।

इस श्लोक के साथ ही नारद द्वारा वाल्मीकि को सुनाई गई रामकथा समाप्त हो गई। इसके आगे जो कुछ कहा गया है वह रामराज्य का स्तुतिगान है और रामायण पाठ की फलश्रुति है। इस प्रकार बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में प्रस्तुत अनुक्रमणिका अथवा सार-संक्षेप (Synopsis) में अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक के घटनाक्रम का उल्लेख है। वाल्मीकि रामायण की आधारभूत नारद द्वारा प्रस्तुत रामकथा में उत्तरकाण्ड की कथावस्तु का उल्लेख न होने से निश्चय ही सारा प्रक्षिप्त है। दूसरी अनुक्रमणिका में अवश्य उसका संकेत मिलता है।

प्रश्न उठता है कि इस दूसरी अनुक्रमणिका का रचयिता कौन है? यदि वह वाल्मीकि से भिन्न कोई व्यक्ति है तो वाल्मीकि की तुलना में उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता। निश्चय ही वाल्मीकि उसके प्रणेता नहीं हो सकते। क्योंकि यदि उन्होंने स्वयं अपनी अनुक्रमणिका को अपूर्ण माना होता तो दुबारा आद्योपान्त न लिखकर, जितना लिखने से रह गया था, उतना अंश बढ़ा देते।

इस पर स्वामी करपात्री जी कहते हैं कि "पहला सर्ग अनुक्रमणिका का है ही नहीं। और उसके मुख्य वक्ता नारद हैं।" अनुक्रमणिका (नाम) न सही, पर जो कुछ भी है उसका नारदोक्त होना तो आप स्वीकार करते हैं। द्वितीय सर्ग में ब्रह्मा जी का आगमन हुआ। अपने घर वापस लौटते हुए ब्रह्मा जी वाल्मीकि जी को कह गए—

वृत्तं कथय वीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥2/33

राम का रहस्य या प्रकट जैसा भी आपने नारद से सुना है, वैसा ही चरित कहना। ब्रह्मा जी के जाते ही वाल्मीकि की यह बुद्धि हुई अर्थात् उन्होंने यह निश्चय किया कि "कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम्" (बाल-2/41) —मैं संपूर्ण रामायण की रचना इसी प्रकार करूँ। पहले द्वितीय सर्ग के अन्त में कहा—"रघुवीरचरितं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम्।" पुनः चतुर्थ सर्ग में कहा—

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितव्रतः ॥7॥

इन दोनों उक्तियों से भी स्पष्ट है कि वाल्मीकिकृत रामायण रावणवध तक ही है। इसीलिए इस महाकाव्य को 'रामायण' और 'पौलस्त्यवध' इन दोनों नामों से जाना जाता है। यह भी कहा जाता है कि जैसे व्यास जी ने महाभारत का नाम पहले 'जय' रखा था, वैसे ही वाल्मीकि जी ने भी अपने काव्य का नाम 'पौलस्त्यवध' ही रखा था, क्योंकि कथा का अन्त रावण के वध के साथ ही हो जाता है। आज भी जनसाधारण दशहरा या रामलीला का अन्त रावण को फूंकने के साथ हुआ मानते हैं। बहुत हुआ तो अगले दिन भरतमिलाप का दृश्य दिखा देते हैं। उत्तरकाण्ड के लिए इन समारोहों में कोई स्थान नहीं होता।

द्वितीय सर्ग के अन्त में जब 'रघुवीरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम्' कह दिया गया तो तत्काल प्रथम सर्ग में नारदोक्त रामकथा सुनाना आरम्भ कर देना चाहिए था। पर रामायण की कथा तो पाँचवें सर्ग से आरम्भ होती है। जब नारद ने सारी कथावस्तु संक्षेप में प्रस्तुत कर दी थी तब 'व्यक्तमन्वेषते भूयो यद् वृत्तं तस्य धीमतः' कथासूत्र के फिर से ढूंढ़ने की क्या आवश्यकता थी ? नारद ने तो रामचरित रावण के वध तक पहले ही सुना दिया था और स्वयं वाल्मीकि ने भी यहाँ अन्त में 'रावण का वध सुनो' कहकर मानो नारदोक्त कथावस्तु की समाप्ति की घोषणा कर दी थी। कथा का प्रारम्भ करते समय 'रामायण सुनो' कहकर 'रावण का वध सुनो' कहने में भी निहितार्थ पर विचार करना आवश्यक है। इससे भी रावण के वध के साथ ही रामचरित का कथन समाप्त हो जाता है।

महाभारत में वनपर्व के अन्तर्गत 274 से 291वें अध्याय तक रामोपाख्यान के नाम से रामचरित का वर्णन हुआ है। वहाँ भी रामकथा रावणवध के पश्चात् अयोध्या लौटने पर राम के राज्याभिषेक के साथ समाप्त हो जाती है। इससे पता चलता है कि महाभारत की रचना होने तक रामायण में उत्तरकाण्ड का प्रक्षेप नहीं हुआ था।

तुलसीदासकृत रामचरितमानस (तुलसी रामायण) में सातवाँ काण्ड अवश्य है। परन्तु उसमें भी वह कुछ नहीं है जो वाल्मीकि रामायण में प्रक्षिप्त सातवें काण्ड में है। रामचरितमानस में भी रामकथा वहीं समाप्त हुई है जहाँ वाल्मीकि रामायण में। अर्थात्—राम के लंकाविजय के पश्चात् अयोध्या लौटने पर राम के राज्याभिषेक के साथ ही कथा का अन्त हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास के समय अर्थात् ईसा की सोलहवीं शताब्दी तक भी रामकथा अर्थात् रामायण के घटक के रूप में तथाकथित उत्तरकाण्ड में उपलब्ध घटनाओं की कल्पना नहीं की गई थी।

उत्तरकाण्ड

वाल्मीकि रामायण में कहीं भी उसके सात काण्डयुक्त होने की बात नहीं कही गई। सर्वत्र 6 + 1 = 7 बतलाकर सातवें काण्ड का संकेत किया गया है, जैसे—

> चतुर्विंशतिसहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः।
> ततः सर्गशतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम्॥ बाल० 4/2

उत्तरकाण्ड सर्ग 111 के प्रथम श्लोक में कहा है—

> एतावदेतदाख्यानं सोत्तरं ब्रह्मपूजितम्।
> रामायणमिति ख्यातं मुख्यं वाल्मीकिना कृतम्॥

पुनः वहीं 11वें श्लोक में कहा गया है—

> एतदाख्यानमायुष्यं संभविष्यं सहोत्तरम्।
> कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तद् ब्रह्माप्यन्वमन्यत॥

प्रश्न यह है कि बार-बार उत्तरकाण्ड का पृथक्तः स्मरण क्यों कराया गया है? क्या वाल्मीकि जी को 6 से आगे गिनती नहीं आती थी जो वे सीधे-सीधे सात काण्ड न कहकर सदा 6 काण्ड + 1 काण्ड ही कहते हैं? क्या वाल्मीकि जैसे उत्कृष्ट कवि को पाद पूर्ति अथवा छन्द की मात्राओं या अक्षरों की पूर्ति के लिए ऐसा करना पड़ा और वह भी बार-बार। निश्चय ही दाल में कुछ काला है। समूची रचना में वह अलग से थेगली की तरह लगाया गया प्रतीत होता है, अथवा धोती की लम्बाई कम होने के कारण बाजार से एक गज अतिरिक्त कपड़ा लाकर जोड़ा गया लगता है। पर उस टुकड़े का रंग, धागा, डिजाइन आदि भिन्न होने के कारण खप नहीं पा रहा है। रफूगर कपड़े की मरम्मत इस योग्यता से करते हैं कि वह मरम्मत किया हुआ नहीं जान पड़ता। परन्तु वाल्मीकि तो चिल्ला-चिल्लाकर कहते जाते हैं कि उत्तरकाण्ड के नाम से यह भाग बाद में जोड़ा गया है, पहले नहीं था—इदन्न मम।

'उत्तरकाण्ड सहित आख्यान' को 'ब्रह्मपूजितम्' या ब्रह्माप्यन्वमन्यत' बतलाना भी प्रत्यक्ष का अलाप करना है। ब्रह्मा जी तो वाल्मीकि को रामकथा के निर्माण का आदेश देते हुए चलते-चलते कह गए थे—

"वृत्तं कथय वीरस्य यथा नारदाच्छ्रुतम्" (बाल० 2/3)—जैसा नारद से सुना है, वैसा ही लिखना। और वाल्मीकि ने भी ब्रह्मा के आदेशानुसार वैसा ही

लिखा जैसा नारद जी से सुना था (स यथा कथितं पूर्वं नारदेन महर्षिणा, चकार भगवान् ऋषिः बाल० 3/9) और नारद जी ने उत्तरकाण्ड में आई कोई भी बात वाल्मीकि जी से नहीं कही थी। इसीलिए उत्तरकाण्ड को ब्रह्मानुमोदित नहीं कहा जा सकता।

फल, हेतु तथा उपसंहार का उल्लेख भी ग्रन्थ की समाप्ति का सूचक है। निदर्शनार्थ युद्धकाण्ड के अन्त में उल्लिखित ये श्लोक द्रष्टव्य हैं—

> दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
> भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥128/106

भाइयों सहित राम ने ग्यारह हज़ार वर्ष राज्य किया। भूतकालिक क्रिया 'अकारयत्' (किया) का प्रयोग निश्चित रूप से रामकथा की समाप्ति का द्योतक है।

> धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्।
> आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥107॥
> श्रृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।
> श्रद्धानो जितक्रोधो दुर्गान्यतितरत्यसौ ॥113॥
> श्रृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।
> ते प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवन्ति ह राघवात् ॥114॥

यहाँ एकाधिक बार प्रयुक्त 'कृतम्' क्रियापद भी कार्य की समाप्ति का निश्चायक है।

> रामायणमिदं कृत्स्नं श्रृण्वतः पठतः सदा।
> प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥119॥

जब यहाँ राम के राज्य की अवधि की समाप्ति और प्रकारान्तर से उनके देहत्याग की भी घोषणा कर दी गई तब रामकथा की समाप्ति में क्या सन्देह रह जाता है। अन्तिम श्लोक में 'रामायणमिदं कृत्स्नं' (यह संपूर्ण रामायण) से रामायण की पूर्णता कह दी गई।

पहली अनुक्रमणिका में कथा का अन्त रावणवध के साथ क्यों कर दिया गया? इसका एकमात्र कारण यही है कि सातवाँ काण्ड बाद की रचना है जिससे वाल्मीकि का कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस प्रकार की (किन्तु घटिया स्तर की) फलश्रुति सातवें (उत्तरकाण्ड) के अन्त में भी दी गई है। परन्तु एक ग्रन्थ में दो फलश्रुतियाँ कैसे हो सकती हैं? दूसरी फलश्रुति से सहज स्पष्ट हो जाता है कि वह आदिकवि की रचना नहीं है।

सीता-वनवास

किंवदन्ती के अनुसार एक धोबी ने सीता के चरित्र के विषय में सन्देह व्यक्त किया था। उसी के आधार पर उन्होंने सीता को अपने राजभवन से निकाल कर लक्ष्मण के द्वारा वन में छुड़वा दिया था। वाल्मीकि रामायण में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में इस विषय में लिखा है—

रामचन्द्र जी की 10 सदस्यों की एक मित्रमण्डली थी। इस मित्रमण्डली के सदस्यों के नाम थे—विजय, मधुमत्त, काश्यप, मंगल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्त्र और सुभाग। एक दिन मित्रमण्डली की बैठक में रामचन्द्र जी ने भद्र से पूछा—"काः कथा नगरे भद्र वर्त्तन्ते विषयेषु च ?" आजकल नगर और राज्य में किन बातों की चर्चा विशेष रूप से होती है। भद्र ने उत्तर दिया—आजकल पुरवासियों में आपको लेकर सदा अच्छी चर्चाएँ चलती हैं। परन्तु एक बात खटकती है—

हत्वा रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ॥
अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यदा हि कुरुते राजा प्रजास्तदनुवर्त्तते ॥

—उत्तर० 43/16, 19

युद्ध में रावण को मारकर श्री रघुनाथ जी सीता को घर ले आये। उनके मन में सीता के चरित्र को लेकर रोष या अमर्ष नहीं हुआ ? अब हम लोगों को भी स्त्रियों की ऐसी बातें सहन करनी पड़ेंगी। क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी उसी का अनुकरण करने लगती है।

यह सुनने के बाद रामचन्द्र जी ने अपने तीनों भाइयों को बुला भेजा। उनके आने पर रामचन्द्र जी ने सूखे मुख से यह बात कही—

पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च।
वर्तते मयि बीभत्सा सा मे मर्माणि कृन्तति ॥
जानासि त्वं यथा सौम्य दण्डके विजने वने।
रावणेन हृता सीता स च विध्वंसितोमया ॥
तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुतां प्रति।
अत्रोषितामिमां सीतामानेयं कथं पुरीम् ॥

प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा ।
प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः ।।
चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां सन्निधौ पुरा ।
ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम् ।।
एवं शुद्ध समाचारा देव गन्धर्व सन्निधौ ।
लंकाद्वीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेशिता ।।

—उत्तर० 45/3, 5, 6-9

इस समय पुरवासियों और जनपद के लोगों में सीता के सम्बन्ध में महान् अपवाद फैला हुआ है । मेरे प्रति भी उनका पूर्ण घृणा भाव है । उन सबकी यह घृणा मेरे मर्मस्थल को विदीर्ण किये देती है । सौम्य लक्ष्मण ! तुम तो यह जानते ही हो कि किस प्रकार निर्जन दण्डकारण्य से रावण ने सीता का अपहरण किया था और मैंने उसका विध्वंस भी कर दिया । उस समय लंका में ही जानकी के विषय में मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ था कि इतने दिनों तक यहाँ रह लेने पर भी मैं इन्हें राजधानी में कैसे ले जाऊँगा । उस समय सीता ने अपनी पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए तुम्हारे सामने अग्नि में प्रवेश किया था और देवताओं के समक्ष स्वयं अग्निदेव ने उन्हें निर्दोष बताया था और समस्त ऋषियों के सामने जनकनन्दिनी को निर्दोष घोषित किया था और अन्ततः इस प्रकार विशुद्ध आचार वाली सीता को देवताओं और गन्धर्वों के समीप देवराज इन्द्र ने लंका द्वीप में मेरे हाथों में सौंपा था ।

अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् ।
ततो गृहीत्वा वैदेहीमयोध्यामहमागतः ।।
अहं तु महान् वादः शोकश्चहृदि वर्त्तते ।
पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ।।
अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ।
पतत्येवाधमांल्लोकान् यावच्छन्दः प्रकीर्त्यते ।।
कीर्त्यर्थं तु सर्वारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ।
अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभाः ।।
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ।

—उत्तर० 45/10-15

मेरी अन्तरात्मा भी यशस्विनी सीता को पवित्र समझती है । इसीलिए मैं सीता को साथ लेकर अयोध्या आया था । परन्तु अब यह महान् अपवाद फैलने लगा है । पुरवासियों और जनपद के लोगों में बड़ी निन्दा हो रही है । इसके लिए मेरे हृदय में बड़ा शोक है । जिस किसी प्राणी की अपकीर्ति लोक में सबकी चर्चा

का विषय बन जाती है, वह अधम लोकों (नरकों) में गिर जाता है और जब तक उस अपयश की चर्चा होती रहती है तब तक वह वहीं पड़ा रहता है। नर-श्रेष्ठ बन्धुओं! मैं लोकनिन्दा के भय से अपने प्राणों को और तुम सबको भी त्याग सकता हूँ। फिर सीता की तो बात ही क्या। महात्मा लोग कीर्ति-संपादन के लिए सब प्रकार के उपाय किया करते हैं। यह कहकर और किसी को कुछ कहने का अवसर दिये बिना उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया—

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम्।
प्रारुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज।।
गंगायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः।
आश्रमो दिव्संकाशस्तमसातीरमाश्रितः।।
तत्रैनां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन।
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम।।
न चास्मि प्रतिवक्तव्यः सीतां प्रति कथं च न।
तस्मात्त्वं गच्छ सौमित्रे मात्र कार्या विचारणा।।
अप्रीतिर्हि परा मह्यं त्वयैतत् प्रतिवारिते।।

—उत्तर० 45/16-20

हे लक्ष्मण! कल प्रातः तुम सारथि सुमन्त्र के द्वारा संचालित रथ पर आरूढ़ हो और सीता को उसी रथ पर चढ़ाकर इस राज्य की सीमा के बाहर छोड़ आओ। गंगा के उस पार तमसा के तट पर महात्मा वाल्मीकि का आश्रम है। उस आश्रम के निकट निर्जन वन में सीता को छोड़कर तुम शीघ्र लौट आओ। लक्ष्मण! मेरी इस आज्ञा का पालन करो। सीता के विषय में कोई और बात तुम्हें मुझसे नहीं कहनी चाहिए। इसलिए अब तुम जाओ। इस विषय में कुछ सोच-विचार न करो। मेरे इस निश्चय में यदि तुमने किसी प्रकार की अड़चन डाली तो मुझे महान् कष्ट होगा। इतना ही नहीं, राम ने यहां तक कह दिया—

शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च।
ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथञ्चन।।
अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्ट विघातनात्।
मानयन्तु भवन्तो मां मच्छासने स्थिताः।।
दूतोऽद्य नीयतां सीतां कुरुष्व वचनं मम।

—उत्तर० 45/21-22

मैं तुम्हें अपने चरणों और जीवन की शपथ देता हूँ कि इस विषय में तुम मुझसे किसी प्रकार का अनुनय-विनय मत करना। जो करेंगे वे मेरे अभीष्ट

कार्य में बाधा डालने के कारण सदा के लिए मेरे शत्रु होंगे। यदि तुम मेरा सम्मान करते हो और मेरी आज्ञा मानते हो तो जो मैं कहता हूं सो करो। आज ही सीता को यहाँ से ले जाकर वन में छोड़ आओ।

सीता को बहका कर चुपचाप वन में ले जाने के लिए छल से काम लिया। वे बोले—

पूर्वमुक्तोऽहमनया गंगातीरेऽहमाश्रमान्।
पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम्॥ 45/23

सीता ने एक दिन मुझसे कहा था कि मैं गंगातट पर ऋषियों के दर्शन करना चाहती हूँ। उनकी यह इच्छा पूरी की जाय।

अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए निर्दोष सीता को देशनिकाला देने के अपने अन्यायपूर्ण कृत्य के लिए अपराधी मन राम न स्वयं सीता से कुछ कहने का साहस जुटा सके और न उनका सामना कर सके। इसलिए—

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो वाष्पेण पिहितेक्षणः।
संविवेश स धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः॥
शोकसंविग्नहृदयो निशश्वास यथाद्विपः। 45/25

रामचन्द्र जी के दोनों नेत्र आँसुओं से भर गये। फिर वे अपने भाइयों के साथ महल में चले गये। उस समय उनका हृदय शोक से व्याकुल था और वे हाथी के समान लम्बी साँसें ले रहे थे।

रामचन्द्र जी की आज्ञा के अनुसार लक्ष्मण सीता को ले जाकर वन में छोड़ आये। छोड़कर चलते समय लक्ष्मण ने सीता से कहा—

सा त्वं परित्यक्ता नपतिना निर्दोष मम सन्निधौ।

—उत्तर० 47/13

मेरे सामने आप (लंका में) निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं तथा यहाँ भेजते समय भी स्वयं राम ने मेरे सामने कहा है—'मेरी अन्तरात्मा सीता को पवित्र समझती है।' तो भी महाराज ने आपको लोकापवाद के डर से त्यागा है। उस समय लक्ष्मण ने यह भी कहा—'श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत्'—ऐसे निन्दित कर्म को करने की अपेक्षा तो अच्छा होता यदि मैं मर गया होता।

वस्तुतः जब लक्ष्मण राम के आदेश को इतना निन्दित मानता था तो उसे ऐसा करने से इनकार कर देना चाहिए था। एक समय स्वयं लक्ष्मण ने व्यवस्था दी थी—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम्॥

—अयो० 21/13

यदि गुरु भी कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार किये बिना अपने अभिमान या बड़प्पन में आकर कुपथ पर चलने लगे तो उसका शासन करना उचित है। लक्ष्मण द्वारा दी गई इस व्यवस्था का अनुमोदन महाभारत में चार स्थानों पर किया गया है—आदि पर्व 142/52, उद्योग पर्व 179/24, शान्ति पर्व 57/7 व 140/48, परन्तु कहीं-कहीं चौथे चरण में 'दण्डो भवति शाश्वतः' अथवा 'परित्यागो विधीयते' यह पाठान्तर भी है। रामायण के उक्त श्लोक में जिस तत्त्व का निरूपण किया गया है, उसी के आधार पर भीष्म ने अपने गुरु परशुराम से और अर्जुन ने गुरु द्रोणाचार्य से युद्ध किया। प्रह्लाद ने जब देखा कि पिता हिरण्यकशिपु द्वारा नियत उसके गुरु उसे भगवत्प्राप्ति के विरुद्ध उपदेश दे रहे हैं तो उनका विरोध किया। शान्ति पर्व में स्वयं भीष्म श्रीकृष्ण से कहते हैं कि यद्यपि गुरुजन पूजनीय होते हैं, तथापि उन्हें भी नीति की मर्यादा का पालन करना चाहिए। इसीलिए—

समयत्यागिनेलुब्धान् गुरुनपि च केशव।
निहन्ति समरे पापान् क्षत्रियः स हि धर्मवित् ।।शान्ति 55/16

हे केशव ! जो गुरु मर्यादा, नीति और शिष्टाचार भंग करते हैं, उन्हें युद्ध में मारने वाला ही क्षत्रिय कहलाता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में दीक्षान्त भाषण में 'आचार्य देवो भव' कहकर उसी के आगे कहा है—

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि
—तै० उप० 1/11/2

लक्ष्मण ने उक्त व्यवस्था दशरथ द्वारा राम को वनवास की आज्ञा देने के विरुद्ध दी थी। लक्ष्मण ने यहाँ तक कह दिया—'दुष्टो यदि नः पिता अमित्रभूतो निःसङ्ग वध्यतामपि' (अयोध्या० 21/12) यदि हमारे दुष्ट पिता हमारे शत्रु हो जाएँ तो अवध्य होने पर भी, निःशंक हो, उन्हें मार डालना चाहिए।

लंका विजय के पश्चात् सीता की सच्चरित्रता का सभी देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों आदि ने एक स्वर से अनुमोदन किया था। रावण की बार-बार की गई प्रणययाचना को स्वीकार करके सीता लंका पर राज्य करते हुए सुखपूर्वक रह सकती थी। यदि वह उसे न ठुकराती तो जिस दयनीय दशा में हनुमान ने उनको जीते देखा था, वह कदापि न होती। एक वर्ष तक रावण की कैद में घोर कष्ट सहते हुए जीना क्या सीता की पवित्रता का प्रमाण-पत्र नहीं था ? फिर भी राम ने उनकी पवित्रता पर विश्वास न करके उन्हें अग्नि-परीक्षा में सफल रहने के बाद ही अपनाया था। अब पुनः उनकी पवित्रता पर सन्देह करना क्या इस बात का संकेत नहीं है कि राम को स्वयं अपने पर विश्वास नहीं था ?

सीता सरीखी सतीत्व की जीती-जागती मूर्ति को केवल लोकापवाद के भय से वनवास दिया जाना, और वह भी गर्भावस्था में, हृदय दहला देता है। क्या राम के वनवास की अपेक्षा सीता का वनवास अधिक कठोर एवं अन्यायपूर्ण नहीं था? इसमें भागीदार होने से क्या लक्ष्मण इस पाप में लिप्त होने के आरोप से बच सकता है?

इतना होने पर भी सीता के मन में राम के प्रति कोई आक्रोश नहीं। पर वह निश्चय नहीं कर पा रही है—

> किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः।
> या ह शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥18/4

लक्ष्मण! मैंने पूर्व जन्म में कौन-सा पाप किया था, अथवा किसका स्त्री से विछोह कराया था जो शुद्ध आचरण वाली होने पर भी महाराज ने मुझे त्याग दिया?

ऐसी स्थिति में सीता का जीवन से कोई लगाव नहीं रह गया था। पर वह राम के लिए—रघुकुल के लिए जीना चाहती थी। उसने लक्ष्मण से इतना ही कहा—

> न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जान्हवीतले।
> त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥48/8

अपने जीवन को मैं अभी गंगा में विसर्जित कर देती। परन्तु इस समय मैं ऐसा नहीं कर सकती, क्योंकि (गर्भवती होने के कारण) ऐसा करने से मेरे पति का राजवंश नष्ट हो जायेगा। अपने लिए तो सीता को एक ही बात की चिन्ता थी—

> किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो।
> कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥48/7

यदि मुनिजन मुझसे पूछेंगे कि महात्मा रघुनाथ जी ने किस अपराध के कारण तुम्हें त्यागा है तो मैं उन्हें कौन-सा अपराध बताऊँगी?

ऐसा प्रतीत होता है कि राम के अवचेतन मन में सीता के प्रति अविश्वास का भाव सदा बना रहा था। समय-समय पर वह उभर कर बाहर आता रहता था। जहाँ सीता वनवास के प्रसंग में सीता के चरित्र के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करने में राम की मित्रमण्डली का हाथ था, वहाँ लंका विजय के पश्चात् इस प्रकार का सन्देह स्वयं राम के भीतर से ही उपजा था। राम ने स्वयं स्वीकार किया है—

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुतां प्रति ।
अत्रोषितामिमां सीतामानयेयं कथं पुरीम् ।।4/56

रावण की कैद से मुक्त होकर लंका में सीता के राम के सामने लाये जाने पर राम ने जो कुछ कहा, प्रकारान्तर से वह उनके सन्देहजन्य आक्रोश की ही अभिव्यक्ति थी । उन्होंने सीधे-सीधे सीता को अपनाने से इनकार करते हुए कहा था—

या त्वं विरहिता सीता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ।।
यत् कर्त्तव्यं मनुष्येण धर्षणां परिमार्जता ।
तत् कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकांक्षिणा ।।
रक्षता तु मया वृत्तमपावदं च सर्वतः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिमार्जता ।।
प्राप्त चरित्र सन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा ।।
तद्गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे ।
एतो दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ।।
कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लोभेन चेतसा ।।
रावणांकपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा ।
कथं पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन् महत् ।।
न हि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम् ।
मर्षयत चिरं सीते स्वगृहे पर्यवस्थिताम् ।।
यदर्थं निर्जिता मे त्वं सोऽयमासादितो मया ।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामिति ।।
तदद्य व्याहृतं भद्रे मयैतत् कृतबुद्धिना ।
लक्ष्मणे वाथ भरते कुरु बुद्धिं यथासुखम् ।।
शत्रुघ्ने वाथ सुग्रीवे राक्षसे वा विभीषणे ।
निवेशय मनः सीते यथा वा सुसमात्मना ।।

—युद्ध० 118/5, 13, 16-24

जब तुम आश्रम में अकेली थीं उस समय वह चंचलचित्त राक्षस तुम्हें हर ले गया । यह दोष मेरे ऊपर दैववश प्राप्त था जिसका मैंने परिमार्जन कर दिया । अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिए मनुष्य का जो कर्त्तव्य है वह सब मैंने अपनी मान-रक्षा के लिए रावण का वध करके पूर्ण किया । सदाचार की रक्षा, सब

ओर फैले अपवाद का निवारण तथा अपने सुविख्यात वंश पर लगे कलंक का परिमार्जन करने के लिए ही मैंने यह सब किया है। तुम्हारे चरित्र के बारे में मेरे मन में सन्देह का अवसर उपस्थित है। फिर भी तुम मेरे सामने खड़ी हो। जैसे आँख के रोगी को दीपक की ज्योति नहीं सुहाती, वैसे ही आज तुम मुझे अत्यन्त अप्रिय लग रही हो। अतः हे जनककुमारी! जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ चली जाओ। मैं अपनी ओर से तुम्हें अनुमति देता हूँ। ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिए खुली हैं। अब मेरा तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है। कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही स्त्री को, केवल इस लोभ से कि यह बहुत समय तक मेरे साथ रही है, मन से ग्रहण करेगा? रावण तुम्हें अपनी गोद में भर कर ले गया और तुम पर अपनी दृष्टि डाल चुका है। ऐसी दशा में अपने महान् कुल की महानता का बखान करने वाला मैं तुम्हें कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? सीते! तुम जैसी दिव्य-रूप सौन्दर्य से सुशोभित, मनोरम नारी को अपने घर में स्थित देखकर रावण चिरकाल तक तुमसे दूर रहने का कष्ट सहन नहीं कर सका होगा। अतः जिस उद्देश्य से मैंने तुम्हें जीता था, वह सिद्ध हो गया। अब तुम्हारे प्रति मेरी कोई ममता या आसक्ति नहीं है, अतः तुम जहाँ चाहो जा सकती हो। सीते! मेरा यह निश्चित विचार है। इसके अनुसार ही आज मैंने ये सब बातें तुमसे कह दी हैं। तुम चाहो तो भरत या लक्ष्मण के संरक्षण में रह सकती हो। सीते! तुम्हारी इच्छा हो तो तुम सुग्रीव, शत्रुघ्न अथवा विभीषण के पास रह सकती हो। जहाँ तुम्हें सुख मिले, वहीं अपना मन लगाओ।

इसके उत्तर में अत्यन्त दुखी मन से सीता बोली—

न तथास्मि महाबाहो यथा त्वमवगच्छसि।
प्रत्ययं गच्छ मे येन चरित्रेणैव ते शपे ॥119/6
यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥8
मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥9

हे महाबाहु! मैं वैसी नहीं हूँ, जैसी आप समझ रहे हैं। आप मेरा विश्वास करें। मैं अपने सदाचार की शपथ लेती हूँ। यदि मैं विवश होकर (रावण के शरीर से) छू गई हूँ तो इसमें मेरी इच्छा नहीं थी, भाग्य का ही दोष था। मेरे अधीन जो मेरा मन है वह आपके ही प्रति अनुरक्त है। अंगों के पराधीन होने से मैं असमर्थ क्या कर सकती थी?

इस प्रकार विलाप करते और अपने को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करते हुए सीता ने लक्ष्मण से कहा—

चितां मे कुरु सर्वत्र व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥18

हे लक्ष्मण ! मेरे इस कष्ट की ओषधिरूप चिता तैयार करो। मिथ्यापवाद से कलंकित होकर मैं जीवित रहना नहीं चाहती।

इस प्रकार सीता की अग्नि परीक्षा हुई और सीता निर्दोष सिद्ध हुई। अग्नि परीक्षा के अतिरिक्त देवराज इन्द्र, ब्रह्मा, महादेव आदि देवताओं और पिता दशरथ ने सीता के निर्दोष होने में साक्षी दी। यह सब होने पर ही राम ने सीता को स्वीकार किया।

सीता को वाल्मीकि आश्रम में रहते हुए वनवास की समाप्ति के बाद जब सीता को स्वीकार करने का अवसर उपस्थित हुआ तो राम ने फिर अपनी वही रट लगाई और दूतों से कहला भेजा—

यदि शुद्ध समाचारा यदि वा वीतकल्मषा।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥उत्तर० 95/4

यदि सीता का चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी तरह का पाप नहीं है तो वे आप महामुनि (वाल्मीकि) की अनुमति से यहाँ आकर जन समुदाय के सामने अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।

श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा।
करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममैव च ॥95/6

कल सवेरे जानकी भरी सभा में आवें और अपना तथा मेरा कलंक दूर करने के लिए शपथ करें।

यहाँ बरबस मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों का स्मरण हो आता है—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥ साकेत

महात्मा वाल्मीकि ने उन दूतों की बात सुनकर कहा—

एवं भवतु भद्रं वो यथा वदति राघवः।
तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियाः ॥95/10

ऐसा ही होगा। रघुनाथ जी जो आज्ञा देंगे सीता वही करेगी, क्योंकि पति ही स्त्री के लिए देवता है।

दूतों से यह सुनकर राम को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने राजभवन में आये ऋषि-मुनियों से कहा—

भवन्तः सशिष्या वै सानुगाश्च नराधिपः।
पश्यन्तु सीता शपथं यश्चैवान्योऽपि कांक्षते ॥95/13

आप सभी मुनिवर अपने शिष्यों सहित पधारें। सेवकों सहित राजा लोग भी उपस्थित हों। तथा दूसरा भी जो कोई सीता की शपथ सुनना चाहे, वह आ जाय। इस प्रकार सब लोग एकत्र होकर सीता का शपथ-ग्रहण देखें।

अगले दिन प्रातःकाल सभी वर्णों के सहस्रों की संख्या में प्रजा जन वहाँ उपस्थित हुए। उनमें वशिष्ठ, मौद्गल्य, जावालि, विश्वामित्र, काश्यप, दीर्घतमा, दुर्वासा, भार्गव, पुलस्त्य, वामन, मार्कण्डेय, गर्ग, च्यवन, भरद्वाज, शतानन्द, नारद, गौतम, कात्यायन, अगस्त्य आदि ऋषि भी भारी संख्या में उपस्थित थे। तब मुनिवर वाल्मीकि सीता जी को साथ लेकर वहाँ आये। महर्षि के पीछे-पीछे सीता सिर झुकाये चली आ रही थी। उनके दोनों हाथ जुड़े हुए थे और नेत्रों से आँसू बह रहे थे। उस दृश्य की कल्पना करके पाषाण हृदय भी रो उठेगा। तब उस जन समुदाय के बीच खड़े होकर मुनिवर वाल्मीकि, मानो स्वयं शपथ ले रहे हों, रामचन्द्र जी से इस प्रकार बोले—

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मधारिणी।
अपवादात् परित्यक्ता ममाश्रयसमीपतः ॥
बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥
मनसा वाचा कर्मणा भूतपूर्वं न किल्विषम्।
तस्याहं फलमश्नामि अपापा यदि मैथिली ॥
इयं शुद्धा समाचारा अपापा पतिदेवता।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥
तस्मादियं नरवरात्मजा शुद्ध भावा,
दिव्येन दृष्टि विषयेण मया प्रविष्टा।
लोकापवाद कलुषीकृतचेतसा या,
त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥
96/16, 20, 21, 23, 24

दशरथनन्दन! यह सीता उत्तम व्रत का पालन करने वाली है, और धर्म-परायण है। तुमने लोकापवाद के डर से इसे मेरे आश्रम के पास त्याग दिया था। मैंने अनेक वर्षों तक भारी तपस्या की है। यदि मिथिलेश कुमारी में कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्या का फल न मिले। मैंने मन, वचन और कर्म से कभी कोई पाप नहीं किया है। यदि सीता निष्पाप हो तभी मुझे इस पापशून्य पुण्य का फल मिले। इसका आचरण सर्वथा शुद्ध है। पाप इसे छू तक नहीं सका है तथा यह पति

को ही देवता मानती है। अतः लोकापवाद से डरे हुए आपको यह अपनी शुद्धता का विश्वास दिलायेगी। हे राजकुमार! मैंने अपनी दिव्य दृष्टि से जान लिया था कि सीता का भाव और विचार परम पवित्र है। इसीलिए यह मेरे आश्रम में प्रवेश पा सकी। आप भी जानते हैं कि सीता सर्वथा पवित्र है। तथापि लोकापवाद से कलुषित चित्त होकर आपने इसको त्याग दिया।

महर्षि वाल्मीकि के ऐसा कहने पर उस जन समुदाय के बीच खड़े हो, हाथ जोड़कर रामचन्द्र बोले—

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित्।
प्रत्ययस्तु मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः॥
प्रत्ययश्च पुरावृत्तो वैदेह्याः सुरसन्निधौ।
शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता॥
लोकापवादो बलवान् येन त्यक्त्वा हि मैथिली।
सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन्नपापे त्यभिजानता॥
परित्यक्ता मया सीता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति॥97/2-4

महाभाग! आप धर्म के ज्ञाता हैं। सीता के सम्बन्ध में आप जैसा कह रहे हैं, वह सब ठीक है। आपके इन निर्दोष वचनों से मुझे जनकनन्दिनी की शुद्धता पर पूरा विश्वास हो गया है। एक बार पहले भी देवताओं के सामने विदेहकुमारी की शुद्धता पर विश्वास प्राप्त हो चुका है। उस समय भी सीता ने उपनी शुद्धता की शपथ ली थी जिसके कारण मैंने इन्हें अपने घर में स्थान दे दिया था। किन्तु आगे चलकर फिर बड़े ज़ोर का लोकापवाद उठा जिससे विवश होकर मुझे सीता का परित्याग करना पड़ा। ब्रह्मन्! यह जानते हुए भी कि सीता सर्वथा निष्पाप है, मैंने केवल समाज के भय से इनको छोड़ दिया था। अतः आप इस अपराध के लिए मुझे क्षमा करें।

श्री रामचन्द्र के अभिप्राय को जानकर सीता की शपथ के समय ब्रह्मा जी के नेतृत्व में समस्त बड़े-बड़े देवता वहाँ पहुँच गये थे। उपस्थित देवताओं और ऋषियों को देखकर रामचन्द्र जी एक बार फिर बहक गये। सीता को निष्पाप मान और अपना अपराध स्वीकार कर क्षमायाचना करने के बाद भी बोले—

प्रत्ययो मे सुरश्रेष्ठ ऋषिवाक्यैरकल्मषैः।
शुद्धायां जगतो मध्ये वैदेह्यां प्रीतिरस्तु मे॥97/10

हे सुरश्रेष्ठ! यद्यपि मुझे महर्षि बाल्मीकि के निर्दोष वचनों से सीता की पवित्रता का विश्वास हो गया है, तथापि जनसमाज के बीच वैदेही की शुद्धता प्रमाणित हो जाने पर मुझे अधिक प्रसन्नता होगी।

तदनन्तर सीता बोली—

यथाहं राघवादन्य मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ।।97/14

मैं श्री रघुनाथ जी के सिवा किसी दूसरे पुरुष का (स्पर्श तो दूर रहा) मन से भी चिन्तन नहीं करती। यदि यह सत्य है तो भगवती पृथिवी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें ।

सीता देवी निर्दोष होते हुए भी इस सार्वजनिक अपमान को सहन न कर सकीं और अपनी पवित्रता का शपथ-पत्र (Affidevit) देते ही संज्ञाहीन होकर धरती पर गिर पड़ीं । इसी को काव्य की भाषा में 'धरती में समा गई' कहा गया है ।

सार्वजनिक रूप में निर्दोष सिद्ध हो जाने पर सीता ने राम के साथ घर लौटने से इनकार कर दिया । मानो वह जाते-जाते कह गईं कि मैं उस पुरुष का मुँह देखना नहीं चाहती जिसने मेरे 'गरुए गर्भ' की भी चिन्ता नहीं की और मुझे कलंकित करके घर से निकाल दिया और पिकनिक के बहाने हिंसक पशुओं का भक्ष्य बनाने के लिए जंगल में छुड़वा दिया ।

समीक्षा

उपर्युक्त विवरण से जो बातें स्पष्टत: उभर कर सामने आती हैं वे इस प्रकार हैं—

1. राम ने जो लंका पर आक्रमण किया था वह अपनी पत्नी की रक्षा या एक अत्याचार पीड़ित असहाय नारी के उद्धार के लिए नहीं, अपितु रावण को मारकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए अपने अपमान का बदला लेने के लिए किया था। एक व्यक्ति के अहं की तुष्टि अथवा उसकी प्रतिष्ठा बनाने के लिए इतने बड़े नरसंहार (रामरावणयोर्युद्धं राम-रावणयोरिव) में प्रवृत्त होना आर्योचित नहीं कहा जा सकता। यह लोकैषणा की पराकाष्ठा है जिसका उत्तरकाण्ड को छोड़ कर रामायण में अन्यत्र उपलब्ध रामचरित से सामंजस्य नहीं हो सकता ।

2. सीता को वनवास दिये जाने के कारण उनका (सीता का) कोई दोष न होकर मात्र लोकापवाद था। संसार में ऐसा कौन है जिसकी कोई न कोई निन्दा न करता हो ? क्या स्वयं परमेश्वर पर समय-समय पर अविवेकी, अन्यायी और निर्दयी होने के लांछन नहीं लगाये जाते ? महाभारत में लिखा है—

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः ।
उत्पद्यन्तेत्रयः पक्षाः मित्रोदासीन शत्रवः ।।

योगाभ्यासादि में निरत, संसार से विरक्त, वन में निवास करने वाले ऋषि-

मुनियों के भी तीन पक्ष उत्पन्न हो जाते हैं—(1) मित्र व सहयोगी, (2) उदासीन या तटस्थ और (3) अनिष्ट चाहनेवाले शत्रु।

राम जैसे सकल शास्त्र निष्णात, नीतिनिपुण तथा व्यवहारकुशल राजा से बिना सोचे-समझे ऐसे अन्यायपूर्ण निर्णय की आशा नहीं की जा सकती थी—मर्यादा-पुरुषोत्तम से तो कदापि नहीं। भर्तृहरि ने लिखा है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

नीतिकुशल लोग निन्दा करें या स्तुति, धनैश्वर्य आये या जाये, आज ही मृत्यु सामने खड़ी हो या युग-युगान्तर तक जीते रहने का विश्वास हो, पर धीर पुरुष कभी न्याय-मार्ग से विचलित नहीं होते। वह कैसा राजा जो सुनी-सुनाई बातों पर या अनुमान लगाकर तदनुसार दण्ड व्यवस्था करता हो।

दण्ड व्यवस्था की सामान्य प्रक्रिया है कि अभियुक्त को उसका अपराध बताया जाता है और उसे अपनी सफाई देने का अवसर दिया जाता है। पूरी जाँच-पड़ताल और ऊहापोह के बाद अपराध सिद्ध होने पर अपराध की गंभीरता के अनुसार दण्ड दिया जाता है। सीता के साथ ऐसा कुछ नहीं किया गया। लक्ष्मण उसे ऋषि-मुनियों के गंगातट पर स्थित आश्रमों की सैर कराने के बहाने ले जाकर (जैसे दुष्ट लोग छोटे बच्चों को टाफी का लालच देकर बहका ले जाते हैं) जंगल में ले गया और छोड़ कर चलते समय बता दिया कि तुम्हारे चरित्र में सन्देह के कारण फैले हुए अपवाद से बड़े भैया ने तुम्हारा परित्याग कर दिया है। तात्पर्य यह है कि जेल के सींखचों में जन्म-भर के लिए बन्द करके उसे बता दिया गया कि तुम्हारे बारे में सुनने में आया है कि तुमने चोरी की है। चोरी के कारण नहीं, चोरी का 'सन्देह' होने के कारण तुम्हें यह दण्ड दिया गया है। दण्ड देने वाले मजिस्ट्रेट ने भी मुझसे कहा है कि सीता निरपराध है। अंग्रेजी में एक कहावत है—'Give the dog a bad name and hang him.' सीता के साथ यही हुआ। सन् 1919 में भारत में ब्रिटिश सरकार ने रौलट एक्ट के नाम से एक कानून बनाया था जिसके विषय में पंजाब केसरी ला० लाजपतराय ने टिप्पणी की थी—'न वकील, न दलील, न अपील।' यही वह कानून था जिसके विरोध में बुलाई गई सार्वजनिक सभा में जलियाँवाला बाग में जनरल डायर की चलाई गई गोलियों से ऐतिहासिक हत्याकाण्ड हुआ था। पर सीता के साथ तो यह अन्याय रामराज्य में हुआ था।

जब लंका में युद्ध की समाप्ति पर सीता पर स्वयं राम ने चरित्रहीनता का

आरोप लगाया था तब समस्त ऋषियों ने एक स्वर से सीता को निर्दोष घोषित कर दिया था तब कतिपय अज्ञातकुलशील लोगों (किंवदन्ती के अनुसार एक धोबी) के कहने से दुबारा उसी आरोप के कारण दण्डित करना तो सरासर अन्याय और अत्याचार था। आज जिस दूषित न्याय व्यवस्था में हम रह रहे हैं, उसमें भी 'you can't try or punish a man twice for the same offence' एक ही अपराध के लिए किसी को दो बार दण्डित नहीं किया जा सकता।

कालिदास ने लिखा है—"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करण-प्रवृत्तयः" (अभिज्ञानशाकुन्तलम्)—किसी प्रकार के असमंजस की स्थिति में अपने अन्तःकरण द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए। लक्ष्मण को सीता को वन में ले जाकर छोड़ आने का आदेश देते हुए भी राम ने कहा था—"अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम्।" 'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।' परन्तु राम न भर्तृहरि की कसौटी पर खरे उतरे, न कालिदास की और न अपनी। वाल्मीकि ने राम को 'वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः' बताया है। परन्तु अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध सीता को वनवास देते समय उनको यजुर्वेद के इस मन्त्र का ध्यान नहीं आया—

> असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
> तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः॥ यजु: 40/3

यदि अपराध का निश्चय हो जाने पर राम को सीता का परित्याग करना ही पड़ता तो भी उसके रहने-सहने और गर्भावस्था में अपेक्षित चिकित्सा आदि की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए थी। आज भी कारावास में व्यक्ति के स्तर के अनुरूप उसके जीवन-यापन की व्यवस्था की जाती है। परित्यक्ता (Divorcee) के लिए जीवन-भर की भरण-पोषण की जिम्मेदारी पति की होती है। यदि सम्बन्ध विच्छेद के समय स्त्री गर्भवती है तो बच्चे का जन्म होने तक पति की विशेष जिम्मेदारी होती है।

रावण जैसे बलिष्ठ एवं दुर्दान्त व्यक्ति से छुटकारा पाना सीता जैसी कोमलाङ्गी के लिए संभव नहीं था। ऐसी स्थिति में यदि उसका शरीर रावण के शरीर से छू गया तो इसमें उसका क्या दोष था? परिस्थिति-विशेष में जान से मार डालने वाले को भी फाँसी नहीं दी जाती—उसे मुक्त कर दिया जाता है या दण्ड कम कर दिया जाता है। सीता रोती-बिलखती हुई कहती है कि आपने मेरी भक्ति और शील को पीठ पीछे फेंक दिया। अग्निपरीक्षोपरान्त ही राम ने सीता को स्वीकार किया था। उस अवसर पर राम ने ही अग्नि से कहा था—"तीनों लोकों में सीता पाप के योग्य नहीं है। मैं भी जनकपुत्री को अपने प्रति भक्त, मेरे चित्त के अनुकूल चलनेवाली और मुझसे अन्यत्र हृदय न रखनेवाली

मानता हूँ। जब एक बार अग्निपरीक्षा हो गई, यह मानते हुए भी कि सीता सर्वथा निष्पाप है, दुबारा आरोप लगाते हुए शपथ-ग्रहण की शर्त लगाना कहाँ का न्याय था? सीता के धरती में समाने में यह भी कारण रहा होगा कि सीता ने सोचा हो कि इस आदमी का क्या भरोसा? पता नहीं कब फिर इसके भीतर बैठा सन्देह का कीड़ा कुलबुलाने लगे। मैं बार-बार कब तक शपथ ग्रहण करके इसे अपनी पवित्रता के प्रमाण-पत्र देती रहूँगी।

दोनों बार सीता के परित्याग का कारण लोकाराधन अर्थात् प्रजा के हितार्थ एक आदर्श की स्थापना करना था। इस विषय में प्रसिद्ध श्लोक है—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

किन्तु दुष्ट प्रकृति के कुछ लोगों की पुष्टि के लिए किसी निर्दोष व्यक्ति को फाँसी पर चढ़ाना एक जघन्य अपराध है। सीता राम की पत्नी थीं, पर वे 'राजा' राम की प्रजा भी तो थीं। क्या इस नाते उनको न्याय पाने का अधिकार नहीं था? राम मन में सीता को निर्दोष मानते थे। उस निर्दोष की रक्षा करने की बजाय लोगों की सुनी-सुनाई बातों (Hearsay) पर विश्वास करके किसी को दण्ड देना अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करना है जिसके फलस्वरूप ईश्वरीय दण्ड-व्यवस्था से नहीं बचा सकता।

सीता के चरित्र विषयक मुकदमे में स्वयं राम एक पक्ष थे—प्रत्यक्षतः वे ही आरोपी थे। उसमें उन्हें निर्णय देने का अधिकार नहीं था। इस मुकदमे की सुनवाई भरत की या किसी अन्य उपयुक्त व्यक्ति की अदालत में होनी चाहिए थी। भरत के विषय में महाराजा दशरथ का मत था—"रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्" (अयोध्या 12/62)। कुलगुरु वसिष्ठ को सौंपा जा सकता था जिन पर राजा-प्रजा सबका विश्वास था।

परन्तु इस सबके लिए न राम दोषी हैं (क्योंकि उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया) और न वाल्मीकि (क्योंकि उन्होंने स्वरचित रामायण में ऐसा कुछ नहीं लिखा)। इसके लिए दोषी है वह जिसने उत्तरकाण्ड लिख कर वाल्मीकिकृत रामायण में उसका प्रक्षेप किया। और दोषी हैं वे लोग जो उत्तरकाण्ड को वाल्मीकिकृत रामायण का भाग मानते हैं। सीता वनवास की घटना सर्वथा कपोलकल्पित है।

लव-कुश

राम द्वारा अयोध्या में आयोजित यज्ञ में महर्षि वाल्मीकि सम्मिलित हुए थे।

स शिष्यावब्रवीद्धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा॥ उत्तर० 93/5

उन्होंने अपने दो हृष्ट-पुष्ट शिष्यों से कहा—तुम दोनों भाई सब ओर घूम-फिर कर बड़े आनन्दपूर्वक संपूर्ण रामायण का गायन करो।

यदि पृच्छेत् स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ।
वाल्मीकेरथ शिष्यौ द्वौ ब्रूतमेनं नराधिपम्॥13

यदि श्री रघुनाथ जी पूछें—बच्चो! तुम दोनों किसके पुत्र हो तो महाराज से कह देना कि हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं।

ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समाहिताः।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोत्थितौ॥ 94/14

उन दोनों को देख-सुन कर लोग परस्पर कहने लगे—इन दोनों कुमारों की आकृति बिल्कुल भी रामचन्द्र जी से मिलती है। ये बिम्ब से प्रकट हुए प्रतिबिम्ब के समान प्रतीत होते हैं।

जटिलौ यदि न स्याता न वल्कलधरौ यदि।
विशेषं नाभिगच्छामो गायतो राघवस्य च॥15

यदि इनके सिर पर जटाएँ न होतीं और ये वल्कल न पहने होते तो हमें रामचन्द्र जी में और गायन करनेवाले इन कुमारों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता।

श्रुत्वा विंशति सर्गांस्तान् भ्रातरं भ्रातृवत्सलः।
अष्टादशसहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः॥ 18
प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकांक्षितम्।
ददौ स शीघ्रं काकुत्स्थो बालयोर्वै पथक्-पृथक्॥ 19
दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ।
ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मतौ॥ 20

वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥ 21
तथा तयोः प्रब्रुवतोः कौतूहलसमन्विताः ।
श्रोतारश्चैव रामश्च सर्वं एव सुविस्मिताः ॥ 22
कृतानि गुरुणास्माकमृषिणा चरितं तव ।
प्रतिष्ठा जीवितं यावत् तावत् सर्वस्य वर्तते ॥ 28

बीस सर्गों तक गायन सुनने के बाद श्रीराम ने अपने छोटे भाई भरत से दोनों भाइयों को 18-18 हजार मुद्राएँ पुरस्कार रूप में देने को कह दिया। यह भी कह दिया कि और जो कुछ वे चाहें वह भी दे देना। पर दिये जाने पर भी दोनों भाइयों ने लेना स्वीकार नहीं किया। वे बोले—इस धन की क्या आवश्यकता है ? हम वनवासी हैं। जंगली फूल से निर्वाह करते हैं, सोना-चाँदी लेकर क्या करेंगे। उनके ऐसा कहने पर श्रोताओं के मन में बड़ा कुतूहल हुआ। रामचन्द्र जी सहित सभी श्रोता आश्चर्यचकित रह गए। रचयिता का नाम पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि हमारे गुरु वाल्मीकि जी ने सब रचना की है। उन्होंने आपके चरित्र को महाकाव्य का रूप दिया है। इसमें आपके जीवन की सब बातें आ गई हैं।

तस्मिन् गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ ।
तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत् ॥95/2
दूतान् शुद्ध समाचारानाहूयात्ममनीषया ।
मद् वचो ब्रूत गच्छध्वमितो भगवतोऽन्तिके ॥3
यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा ।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥4

उस कथा से रामचन्द्र जी को मालूम हुआ कि कुश और लव दोनों सीता के ही पुत्र हैं। कालिदास के दुष्यन्त के मन में शकुन्तला के पुत्र नन्हें भरत को देखते ही जिन भावों का उद्रेक हुआ था, क्या राम के मन में लव-कुश को देख-सुनकर कुछ वैसी ही प्रतिक्रिया नहीं होनी चाहिए थी ? आदि कवि ऐसे मार्मिक प्रसंग को अछूता कैसे छोड़ देते। निश्चय ही यह समूचा प्रसंग सर्वथा कल्पित एवं प्रक्षिप्त है। यह जानकर सभा के बीच बैठे हुए रामचन्द्र जी ने तो शुद्ध आचार-विचार वाले दूतों को बुलाकर इतना ही कहा—तुम लोग भगवान् वाल्मीकि के पास जाकर कहो कि यदि सीता का चरित्र शुद्ध है और उनमें कोई पाप नहीं है तो वह महामुनि से अनुमति ले यहाँ जन समुदाय के सामने अपनी पवित्रता प्रमाणित करें।

इस प्रकरण के अनुसार रामचन्द्र जी को यज्ञ में आये कुमारों के रामायण

पाठ से ही लव-कुश के उनके अपने पुत्र होने का पता चला था। परन्तु इसी उत्तरकाण्ड के सर्ग 65-66 के अनुसार शत्रुघ्न को लव-कुश के जन्म लेने का बहुत पहले से पता था। सीता के प्रसव काल में शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में उपस्थित थे। जिस रात को शत्रुघ्न ने महर्षि की पर्णशाला में प्रवेश किया था उसी रात सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया था। आधी रात के समय कुछ मुनि कुमारों ने वाल्मीकि जी के पास आकर बताया—"भगवन्! रामचन्द्र जी की पत्नी ने दो पुत्रों को जन्म दिया है।" उन कुमारों की बात सुनकर महर्षि उस स्थान पर गए। सीता जी के वे दोनों पुत्र बाल चन्द्रमा के समान सुन्दर तथा देवकुमारों के समान तेजस्वी थे।

अर्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत् प्रियम्।
पर्णशालां ततो गत्वा मातर्दिष्ट्येति चाब्रवीत्॥
तदा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः।
व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघु विक्रमा॥
प्रभाते तु महावीर्यः कृत्वा पूर्वाह्णिकीं क्रियाम्।
मुनिं प्राञ्जलिरामन्त्र्य ययौ पश्चान्मुखः पुनः॥66/12-14

आधी रात को शत्रुघ्न को सीता के दो पुत्रों के होने का संवाद मिला। तब वे सीता की पर्णशाला में गए और बोले—"माता जी! यह बड़े सौभाग्य की बात है।" महात्मा शत्रुघ्न उस समय इतने प्रसन्न थे कि उनकी वह वर्षाकालीन सावन की रात बात की बात में बीत गई। सवेरा होने पर महापराक्रमी शत्रुघ्न हाथ जोड़ मुनि की आज्ञा लेकर पश्चिम दिशा की ओर चल दिए।

यह कैसे हो सकता है कि शत्रुघ्न ने वर्षों तक रामचन्द्र जी को ही नहीं, सारे परिवार को सीता के पुत्रों के होने का शुभ समाचार न दिया हो। महर्षि वाल्मीकि का आश्रम भी अयोध्या से कौन-सा दूर था—उनका अयोध्या में आना-जाना भी लगा रहता था। इसलिए यज्ञ के अवसर पर लव-कुश के सार्वजनिक रूप से रामायण के गाये जाने के समय तक राम को अपने पुत्रों के पैदा होने का पता न चला हो, यह कैसे हो सकता है? इससे उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त होने के साथ-साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह किसी एक व्यक्ति की रचना भी नहीं है अन्यथा उसमें पूर्वापर विरोध न होता।

प्रक्षिप्त उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत होने से लव-कुश का राम की सन्तान होना भी संदिग्ध है। नारद द्वारा प्रस्तुत कथावस्तु के अनुसार ही वाल्मीकिकृत रामायण में उसका कोई उल्लेख नहीं है। यदि 'कुशीलवौ' से सीता की सन्तान अभिप्रेत होती तो सीधा 'कुशलवौ' या 'लवकुशौ' कहा गया होता। 'कुशीलव' का शब्दार्थ है—कुत्सितं शीलमस्य = कुशील + व (आप्टे)। अमरकोश के द्वितीय

काण्ड में शूद्रवर्ग के अन्तर्गत कुशीलव का अर्थ लिखा है—'कुत्सितं शीलमस्त्येषाम्'—चारणास्तु कुशीलवाः। हारीत धर्मसूत्र में श्राद्ध में निमन्त्रण के अयोग्य व्यक्तियों का निर्देश करते हुए 'कुशीलव' को भी गिना है (देखो कृत्यकल्पतरु, श्राद्धकाण्ड, पृष्ठ 88)।

गवैये, भाट अथवा काव्योपजीवी के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है। प्रायः टीकाकारों ने कुशीलव का अर्थ चारण=स्तुति करने वाला किया है। मनुस्मृति 8/65 में नट-भाट के लिए प्रयोग करके उन्हें साक्षी के अयोग्य ठहराया गया है—न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुक कुशीलवौ। कौटिलीय अर्थशास्त्र अष्टादशं प्रकरणम् आत्मरक्षितकम्) में राजा की रक्षाव्यवस्था के प्रसंग में लिखा है—कुशीलवाः शास्त्राग्निरसक्रीडावर्जं नर्मयेयुः। (16) आप्टे ने अपने कोश में समाचार फैलाने वाले को कुशीलव कहा है।

शम्बूक-वध

एक दिन एक ब्राह्मण का इकलौता बेटा मर गया। उस ब्राह्मण ने लड़के के शव को लाकर राजद्वार पर डाल दिया और विलाप करने लगा। उसका आरोप था कि बालक की अकाल मृत्यु का कारण राजा का कोई दुष्कृत्य है। ऋषि-मुनियों की परिषद् ने इस पर विचार करके निर्णय दिया कि राज्य में कहीं कोई अनधिकारी तप कर रहा है। क्योंकि—

राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः।
असद्वृत्ते हि नृपतावकाले म्रियते जनः॥ उत्तर 73/1

राजा के दोष से जब प्रजा का विधिवत् पालन नहीं होता तभी प्रजावर्ग को विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। राजा के दुराचारी होने पर ही प्रजा में अकाल मृत्यु होती है। रामचन्द्र जी ने इस विषय पर विचार करने के लिए मन्त्रियों को बुलाया। उनके अतिरिक्त वसिष्ठ, नामदेव, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम तथा नारद और उनके तीनों भाइयों को भी बुलाया। तब नारद जी ने कहा—

शृणु राजन् यथाकाले प्राप्तो बालस्य संक्षयः।
श्रुत्वा कर्त्तव्यतां राजन् कुरुष्व रघुनन्दन॥
अधर्मः परमो राजन् द्वापरे शूद्रजन्मनः।
स वै विषयपर्यन्ते तव राजन् महातपाः॥
अद्य तप्यति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधोह्यम्।
सत्वं पुरुषशार्दूल मार्गस्व विषयं स्वकम्॥
दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर॥

74/8, 28, 29, 32

राजन्! द्वापर में भी शूद्र का तप में प्रवत्त होना महान् अधर्म है (फिर त्रेता में तो उसके तप में प्रवृत्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता)। निश्चय ही आपके राज्य की सीमा पर कोई खोटी बुद्धिवाला शूद्र तपस्या कर रहा है। उसी के कारण बालक की मृत्यु हुई है। अतः आप अपने राज्य में खोज कीजिए और जहाँ कोई दुष्ट कर्म होता दिखाई दे वहाँ उसे रोकने का यत्न कीजिए।

यह सुनते ही रामचन्द्र पुष्पक विमान पर सवार होकर (वह तो अयोध्या

लौटते ही उसके असली स्वामी कुबेर को लौटा दिया गया था—युद्ध 127/62) शम्बूज की खोज में निकल पड़े (75/5) और दक्षिण दिशा में शैवल पर्वत के उत्तर भाग में एक सरोवर पर तपस्या करते हुए एक तपस्वी मिल गया (75/13)

राघवस्तमुपागम्य तप्यन्तं तप उत्तमम्।
उवाच स नृपो वाक्यं धन्यस्त्वमसि सुव्रत ॥
कस्यां योन्यां तपोवृद्ध वर्तसे दृढविक्रम।
कौतूहलात्त्वां पृच्छामि रामो दाशरथिर्ह्यहम् ॥
कोऽर्थो मनीषितस्तुभ्यं स्वर्गलाभमपरोऽथवा।
वराश्रयो यदर्थं त्वं तपस्यन्यैः सुदुश्चरम् ॥
यमाश्रित्य तपस्तप्तं श्रोतुमिच्छामि तापस।
ब्राह्मणो वासि भद्रं ते क्षत्रियो वासि दुर्जयः ॥
वैश्यस्त्रतीयो वर्णो वा शूद्रो वा सत्यवाग् भव ॥75/14-18

देखकर राजा श्री रघुनाथ जी उग्र तप करते हुए उस तपस्वी के पास जाकर बोले—"उत्तम तप का पालन करने वाले तापस ! तुम धन्य हो। तपस्या में बड़े-चढ़े, सुदृढ़ पराक्रमी पुरुष ! तुम किस जाति में उत्पन्न हुए हो ? मैं दशरथकुमार राम तुम्हारा परिचय जानने के लिए ये बातें पूछ रहा हूँ। तुम्हें किस वस्तु के पाने की इच्छा है ? तपस्या द्वारा सन्तुष्ट हुए इष्टदेव से तुम कौन-सा वर पाना चाहते हो—स्वर्ग या कोई दूसरी वस्तु ? कौन-सा ऐसा पदार्थ है जिसे पाने के लिए तुम ऐसी कठोर तपस्था कर रहे हो जो दूसरों के लिए दुर्लभ है ?

तापस ! जिस वस्तु के लिए तुम तपस्या में लगे हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। इसके सिवा यह भी बताओ कि तुम ब्राह्मण हो या अजेय क्षत्रिय ? तीसरे वर्ण के वैश्य हो या शूद्र हो ?"

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तस्याक्लिष्ट कर्मणः।
अवाक्शिरास्तथाभूतो वाक्यमेतदुवाच ह ॥
न मिथ्याहं वदे राम देवलोक जिगीषया।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः॥76/1-2

क्लेशरहित कर्म करनेवाले भगवान् राम का यह वचन सुनकर नीचे मस्तक करके लटका हुआ वह तपस्वी बोला—हे श्रीराम ! मैं झूठ नहीं बोलूंगा। देवलोक को पाने की इच्छा से ही तपस्या में लगा हूँ। मुझे शूद्र जानिए। मेरा नाम शम्बूक है।

आपतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम्।
निष्कृष्य कोषाद् विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥76।4

वह इस प्रकार कह ही रहा था कि रामचन्द्र जी ने म्यान से चमचमाती तलवार निकाली और उसका सिर काटकर फेंक दिया।

शास्त्रीय व्यवस्था है—'न हि सत्यात् परो धर्मः नानृतात् पातकं परम्।' एतदनुसार मौत के साये में भी असत्य भाषण न करनेवाला शम्बूक धार्मिक पुरुष था। सत्यवाक् होने के महत्त्व को दर्शानेवाली एक कथा छान्दोग्योपनिषद् में इस प्रकार लिखी है—"सत्यकाम जाबाल जब गौतम गोत्री हारिद्रुमत मुनि के पास शिक्षार्थी होकर पहुँचा तो मुनि ने उसका गोत्र पूछा। उसने कहा कि मैं नहीं जानता, मेरा गोत्र क्या है। मैंने अपनी माता से पूछा था। उन्होंने उत्तर दिया था कि युवावस्था में मैं अनेक व्यक्तियों की सेवा करती रही। उसी समय तेरा जन्म हुआ, इसलिए मैं नहीं जानती कि तेरा गोत्र क्या है। मेरा नाम सत्यकाम है। इस पर मुनि ने कहा—"नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति।" अर्थात्—जो ब्राह्मण न हो वह ऐसी (सत्य) बात नहीं कह सकता।" (छान्दोग्य० 3/4) वह शूद्र और इस कारण मृत्युदण्ड का अपराधी कैसे हो सकता था? यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा—

राजन्! कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा।
ब्राह्मण केन भवति एतद् ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥
महा० वन० 313/108

यक्ष ने उत्तर दिया—

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥
महा० वन० 313/108

वृत्तं यत्नेन संरक्ष्य ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः ॥
महा० वन० 313/109

इस प्रकार युधिष्ठिर के अनुसार कुल, स्वाध्याय व ज्ञान से द्विज नहीं बनता। द्विज केवल आचरण से बनता है—इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिए। विशेष रूप से ब्राह्मण को अपने आचरण की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि

शम्बूक में आचरण सम्बन्धी कोई दोष नहीं बताया गया, इसलिए वह द्विज ही था। काठक संहिता में लिखा है—

किं ब्राह्मणस्य पितरं किम् पृच्छसि मातरम् ।
श्रुतं चेदस्मिन् वेद्यं स पिता स पितामहः ॥

ब्राह्मण के विषय में यह क्यों पूछते हो कि उसके माता-पिता कौन हैं। यदि उसमें ज्ञान और तदनुसार आचरण हैं तो वे ही उसके बाप-दादा हैं ।

कर्ण ने सूतपुत्र होने के कारण स्वयंवर में अयोग्य ठहराये जाने पर कहा था—'दैवायत्तं कुले जन्म ममायत्तं तु पौरुषम्'—जन्म देना तो ईश्वराधीन है, परन्तु पुरुषार्थ के द्वारा कुछ का कुछ बन जाना मनुष्य के अपने वश में है। आपस्तम्ब सूत्र में कहा है—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥1॥
अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥2॥
आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/5/11/10-11

धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है जिसके वह योग्य हो। इसी प्रकार अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे-नीचे वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जाता है। मनुस्मृति में कहा है—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् । मनु० 10/65

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण के गुण-कर्म-स्वभाववाला हो, वह ब्राह्मण बन जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मणा-कुलोत्पन्न होकर भी जिसके गुण-कर्म-स्वभाव शूद्र के सदृश हों वह शूद्र हो जाता है।

चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्र परो दान्तः स ब्राह्मणः इति स्मृतः ॥
महा० वन० 313/111

चारों वेदों का विद्वान्, किन्तु चरित्रहीन, ब्राह्मण शूद्र से निकृष्ट होता है, अग्निहोत्र करनेवाला जितेन्द्रिय ही ब्राह्मण कहलाता है। महाभारत (अनुगीता पर्व 91/37) में लिखा है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये चाश्रितास्तपः ।
दानधर्माग्निना शुद्धास्ते स्वर्गं यान्ति भारत ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी तपस्या के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण और शूद्र का लक्षण करते हुए वन पर्व में कहा है—

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

यत्रैतल्लक्ष्यते सर्वं वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ।। 180/21, 26

सत्य, दान, क्षमा, शील अनृशंसता, तप और दया जिसमें हों ब्राह्मण होता है और जिसमें ये न हों शूद्र कहाता है ।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि वर्णव्यवस्था का आधार गुण-कर्म-स्वभाव है, जन्म नहीं, और तपस्या करने का अधिकार भी सबको प्राप्त है ।

'श्रीकृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (पौराणिकों के मतानुसार) गीता में कहते हैं—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः ।। गीता 5/18

ज्ञानीजन विद्या और विनय से भरपूर ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल सबको समान भाव से देखते, अर्थात् सबके प्रति एक जैसा व्यवहार करते हैं ।

महर्षि वाल्मीकि को रामचन्द्र जी का परिचय देते हुए नारद जी ने बताया—"आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः" (बाल-1/16)—राम श्रेष्ठ, सबके साथ समान व्यवहार करनेवाले और सदा प्रिय दृष्टिवाले थे । तब वह तपस्या जैसे शुभकार्य में प्रवृत्त शम्बूक की शूद्र कुल में जन्म लेने के कारण हत्या कैसे कर सकते थे ? इतना ही नहीं, आगे 9/12 में श्रीकृष्ण ने कहा—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।

मेरी शरण में आकर स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र अथवा अन्त्यज आदि पापयोनि तक सभी परम गति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए लोकमान्य तिलक स्वरचित गीतारहस्य में लिखते हैं—" 'पापयोनि' शब्द से वह जाति विवक्षित है जिसे आजकल जरायम पेशा कहते हैं । इसका अर्थ यह है कि इस जाति के लोग भी भगवद्भक्ति से सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

पौराणिक लोग शबरी को निम्न जाति की स्त्री मानते हैं । तुलसीदास जी ने तो अपनी रामायण में यहाँ तक लिख दिया—"श्वपच शबर खल यवन जड़ पामर कोल किरात ।" उसी शबरी के प्रसंग में वाल्मीकि जी ने लिखा है—"रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता" (अरण्य 74/10) अर्थात्—वह शबरी सिद्धजनों से सम्मानित तपस्विनी थी । और शबरी ने उत्तर में स्वयं कहा—"अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिः अद्य मे सफलं तप्तम्" ।

तब राम तपस्या करने के कारण शम्बूक को पापी तथा इस कारण प्राणदण्ड

का अपराधी कैसे मान सकते थे ?

राम पर यह मिथ्या आरोप महर्षि वाल्मीकि ने नहीं, उत्तरकाण्ड की रचना करके वाल्मीकि रामायण में उसका प्रक्षेप करने वाले ने लगाया है।

शायद मर्यादा पुरुषोत्तम के तथोक्त कुकृत्य से भ्रमित होकर ही आदि शंकराचार्य ने शूद्रों के लिए वेद के अध्ययन, श्रवणादि का निषेध करते हुए वेद-मन्त्रों को श्रवण करने वाले शूद्रों के कानों में सीसा भरने, पाठ करने वालों की जिह्वा काट डालने और स्मरण करने वालों के शरीर के टुकड़े कर देने का विधान किया। कालान्तर में शंकर का अनुकरण करने वाले रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि ने इस व्यवस्था का अनुमोदन किया। इन्हीं से प्रेरणा पाकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में आदेश दिया—

पूजिये विप्र शीलगुणहीना। शूद्र न गुणगणज्ञान प्रवीणा।।(अरण्य० 40/1)
और—

ढोर गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी। लंका० 61/3

परन्तु यह सब इन आचार्यों की निकृष्ट अवैदिक विचारधारा का परिचायक है। आर्ष साहित्य में कहीं भी इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु इन अज्ञानियों के इन दुष्कृत्यों का ही यह परिणाम है कि करोड़ों आर्य (हिन्दू) स्वधर्म का परित्याग करके विधर्मियों की गोद में चले गये। स्वयं शंकर की जन्मभूमि कालेड़ी में ही नहीं, संपूर्ण केरल में बड़ी संख्या में हिन्दू लोग ईसाई और मुसलमान हो गए और अखिल भारतीय स्तर पर देश के विभाजन का कारण बन गए।

और यदि शम्बूक का तपस्या करना पापकर्म था तो उसका फल=दण्ड उसी को मिलना चाहिए था। परन्तु यहाँ अपराध तो किया शम्बूक ने और उसके फल-स्वरूप मृत्युदण्ड मिला ब्राह्मण पुत्र को और इकलौते बेटे की मृत्यु से उत्पन्न शोक में ग्रस्त हुआ उसका पिता। वर्तमान में इस घटना के कारण राम पर शूद्रों पर अत्याचार करने और सीता वनवास के कारण स्त्रीजाति पर ही नहीं, निर्दोषों के प्रति अन्याय करने के लांछन लगाये जा रहे हैं। कौन रहना चाहेगा ऐसे रामराज्य में ?

अहल्योद्धार

धूरि धरत निज सीस पै कहु रहीम केहि काज ।
जेहिरज मुनि पत्नी तरी तेहि ढूंढत गजराज ।।

कहते हैं कि हाथी चलते-चलते अपनी सूँड से मिट्टी उठाकर अपने शरीर पर डालता रहता है। वह ऐसा क्यों करता है ? रहीम के विचार में वह उस मिट्टी को खोज रहा है जिसका स्पर्श पाकर मुनि पत्नी का उद्धार हो गया था। इस दोहे में जिस घटना का संकेत है उसके अनुसार गौतम मुनि की पत्नी अहल्या अपने पति के शाप से पत्थर हो गई थी और रामचन्द्र जी के चरणों (की धूलि) का स्पर्श पाकर पुनः मानवी रूप में आ गई थी।

पौराणिक कथा के अनुसार—एक समय ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से एक अत्यन्त रूपवती कन्या की सृष्टि की और उसका विवाह गौतम ऋषि से कर दिया। एक बार इन्द्र गौतम मुनि का रूप धारण करके उनकी स्त्री अहल्या के पास गया और उससे संभोग करने लगा। उसी समय गौतम वहाँ आ गए। इस पर अहल्या ने उस छद्मवेषधारी इन्द्र को कुटिया में छिपा दिया। तब वह द्वार खोलने गई। मुनि ने द्वार खोलने में देरी का कारण पूछा तो अहल्या ने वास्तविकता को छिपा कर बात बना दी। परन्तु ऋषि ने अपने तपोबल से सब कुछ जानकर अहल्या को पत्थर बन जाने का शाप दे दिया और यह भी कह दिया कि त्रेता में जब भगवान् राम अवतार लेंगे तो उनके चरणों की धूल से तेरा उद्धार होगा।

मनुष्य से पत्थर और लाखों वर्ष बाद पत्थर से मनुष्य बन जाने की गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रचारित इस कथा का आदि कवि की रचना में कोई उल्लेख नहीं है। वाल्मीकि रचित रामायण में अहल्या के प्रसंग में बालकाण्ड सर्ग 48 में इस प्रकार लिखा है—

तस्यान्तरं विदित्वा तु सहस्राक्षः शचीपतिः ।
मुनिवेषधरोऽहल्यामिदं वचनमब्रवीत् ।।
ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते ।
संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ।।
मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन ।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराज कुतूहलात् ।।

अथाब्रवीत् सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना ।
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ।।
आत्मानं मां च देवेश सर्वदा रक्ष मानद।
इन्द्रस्तु प्रहसन् वाक्यमहल्यामिदमब्रवीत् ।।
सुश्रोणि परितुष्टोऽस्मि गमिष्यामि यथागतम् ।
एवं संगम्य तु तया निश्चक्रामोटजात्ततः ।।
तथा शप्त्वा स वै शक्रमहल्यामपि शप्तवान् ।
इह वर्ष सहस्राणि बहूनि त्वं निवत्स्यसि ।।
वायुभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी ।
अहल्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्निवत्स्यसि ।।

17—22, 29, 30

इन्द्र ने गौतम का वेष धारण कर और वैसा ही स्वर बनाकर ['अन्तर' का अर्थ यहाँ तादृश्य अधिक उपयुक्त है । पाणिनि के 'स्थानेऽन्तरतमः' (1/150) सूत्र में 'अन्तर' शब्द सादृश्य का ही वाचक है । आगे 27वें श्लोक में विशेष रूप से 'समरूपं समास्थाय' कहने से भी धोखा देने के उद्देश्य से बनाया गया वेश अर्थ ही संगत है] अहल्या से कहा—'अर्थी' (= रति की कामना करनेवाले) ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते। इसलिए मैं तुम्हारा समागम चाहता हूँ । दुष्टबुद्धि अहल्या ने मुनि वेषधारी इन्द्र को पहचान कर भी कुतूहलवश उससे समागम किया। तत्पश्चात् अहल्या ने सन्तुष्ट मन से इन्द्र से कहा—'हे इन्द्र, मैं संतुष्ट हूँ । अब तुम यहाँ से शीघ्र चले जाओ।' इस पर इन्द्र हँसते हुए बोला—'मैं भी संतुष्ट हूँ ।' यह कहकर वह कुटिया से निकल गया। गौतम मुनि ने इन्द्र को कुटिया से निकलते हुए देख लिया और अहल्या को शाप देते हुए कहा—"तू यहाँ सहस्रों वर्ष तक निवास करेगी। आहार रहित, केवल वायु का भक्षण करनेवाली, भस्म में सोनेवाली सन्तप्त और सबसे अदृश्य रहकर इस आश्रम में वास करेगी ।" इससे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि इन्द्र ने गौतम का रूप धारण करके छल किया, अहल्या के साथ समागम उसने उसके (अहल्या के) स्वेच्छापूर्वक समर्पण के बाद ही किया। अर्थात् अहल्या ने यह कुकृत्य जानबूझकर किया। हो सकता है कि बाद में अहल्या को अपने इस कुकृत्य पर पश्चात्ताप हुआ हो और लज्जा के कारण समाज से दूर रह कर अपना जीवन व्यतीत करने लगी हो—न किसी से बोल-चाल, न ढंग से खाना-पीना इत्यादि। यही उसका पत्थर हो जाना कहा गया हो।

उधर इन्द्र ने अपने इस कुकृत्य को 'सुरकर्म' बताया है—'इदं सुरकार्यमिदं कृतम्' (49/2) । परंतु वहीं श्लोक 6 से स्पष्ट होता है कि इन्द्र ने यह कृत्य बिना सोचे-समझे काम के वशीभूत होकर किया था। जहाँ इन श्लोकों में इन्द्र के

अहल्या की इच्छा से समागम करने की बात कही गई है, वहाँ निम्न श्लोक में उसे बलात्कारी बताया गया है—

पुरा विचार्य मोहेन मुनिपत्नीं शतक्रतुः।
घर्षयित्वा मुनेः शापत्तत्रैव विफलीकृतः॥
इदानीं कुप्यते देवान् देवराजः पुरंदरः॥ 49/6-7

पहले विचार न करके मोह से मुनि पत्नी (अहल्या) से बलात्कार करके मुनि के शाप से उसी स्थान पर वृषणहीन किया गया। इन्द्र अब देवों पर क्रोध कर रहा है।

पुन. सर्ग 51 में गौतम के पुत्र शतानन्द का वक्तव्य भी द्रष्टव्य है। उसने अपनी माता को 'यशस्विनी' तथा 'दैवेन दुरनुष्ठितम्' (श्लोक 5-6) बताया है। 'दैवेन दुरनुष्ठितम्' पद से स्पष्ट है कि अहल्या ने इंद्र के साथ समागम अपनी इच्छा से नहीं किया था। इन्द्र के छल से ही वह छली गई थी। आगे कहा है—"राघवौ तु ततस्तस्याः पादौ जगृहतस्तुस्तदा" (49/19)। अर्थात्—राम और लक्ष्मण ने उसके पैर छुए। यही नहीं, अहल्या ने भी 'पाद्यमर्घ्यं तथातिथ्यं चकार सुसमाहिता' (49/20) दोनों को, अतिथि रूप में स्वीकार किया और पाद्य तथा अर्घ्य से उनका स्वागत किया। यदि अहल्या का चरित्र सन्दिग्ध होता तो क्या यह सब कुछ होता ?

इस समस्त वर्णन में अहल्या के शिलारूप होने और राम की चरणरज के स्पर्श से पुनःमानवी रूप में आने का कहीं संकेत तक नहीं है। रामायण का प्रसिद्ध टीकाकार गोविन्दराज भी इस बात को नहीं मानता। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—'अनेन पाषाणीभूय स्थितेति न पक्षो वाल्मीकेः।' अर्थात् वाल्मीकि को अहल्या का पाषाण रूप होना अभिमत नहीं है।

अहल्या सम्बन्धी उस कथा को विश्वामित्र से सुनकर जब राम-लक्ष्मण ने गौतम मुनि के आश्रम में प्रवेश किया तो उन्होंने अहल्या को जिस रूप में देखा उसका वर्णन वाल्मीकि ने इस प्रकार किया है—

ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम्। साभ्रां पूर्णचन्द्रप्रभामिव, दीप्तामग्निशिखामिव, दीप्तां सूर्यप्रभामिव—49/15-17

अर्थात्—"तप से देदीप्यमान् रूप वाली, बादलों से मुक्त पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा के समान तथा प्रदीप्त अग्निशिखा और सूर्य के तेज के समान"—क्या यह शिलारूप अहल्या का वर्णन हो सकता है ? इतना ही नहीं, 'शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता' (49/19) शाप का अन्त हुआ जानकर वह राम के दर्शनार्थ आई। शिलाभूत अहल्या के लिए गमनार्थक 'आई' क्रियापद का प्रयोग कैसे हो सकता था ? वस्तुतस्तु अहल्या अपने पति गौतम मुनि की भाँति तपोनिष्ठ देवी थी।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्द्र को 'अहल्यायैजार' कहा है। इसके रहस्य को न समझने के कारण लोगों ने मनमाने ढंग से कथा गढ़कर इन्द्र और अहल्या पर चरित्र-हीनता का दोष लगाया है। इस रहस्य को तन्त्रवार्त्तिक के शिष्टाचार प्रकरण में शंका को पूर्ववर्त्ती कुमारिल भट्टाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"समस्ततेजा परमैश्वर्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैवाहनिलीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मकजरणहेतुत्वाज्जीर्यत्यस्मादनेनवोदितेनेत्यादित्य एवाहल्याजार इत्युच्यते न तु परस्त्रीव्यभिचारात्।"

भाव यह है कि इन्द्र का अर्थ है परमैश्वर्यवान्। वह कौन है ? सूर्य। 'अहल्या' दो शब्दों से मिलकर बना है—अह और ल्या। 'अह' का अर्थ है दिन और 'ल्या' का अर्थ है छिपनेवाली। इस प्रकार दिन में छिपने वाली या न रहने वाली को 'अहल्या' कहते हैं। वह कौन है ? 'रात्रि'। 'जार' का अर्थ है जीर्ण करने वाला। रात्रि को जीर्ण=क्षीण करने वाला होने से सूर्य ही रात्रि अर्थात् अहल्या का जार कहलाता है। इस प्रकार यह परस्त्री (अहल्या) से व्यभिचार करने वाले किसी पुरुषविशेष (इन्द्र) का कोई प्रसंग नहीं है।

शबरी

लोकोक्ति है कि शबरी नामक भीलनी ने राम को अपने जूठे बेर खिलाए थे। इस विषय में अनेक कवियों ने बड़ी सरस और भावपूर्ण कवितायें भी लिख डालीं। परन्तु वाल्मीकि रामायण में न कोई भीलनी है और न बेर फिर बेरों के जूठे होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

सीता की खोज करते हुए जिस शबरी से रामचन्द्र जी की भेंट हुई थी वह शबर जाति की न होकर शबरी नामक श्रमणी थी—'शबरी नाम श्रमणी' (अरण्य० 73/26)। उसे 'धर्मसंस्थिता' कहा गया है—'श्रमणीं धर्मसंस्थिताम्' (74/7) राम ने भी उसे 'सिद्धासिद्ध' और 'तपोधना' कहते हुए सम्मानित किया था (74/10)। सनातनधर्मी नेता स्वामी करपात्री के अनुसार "शबरी का शबर जाति का होना और झूठे फल देना आदि प्रामाणिक न होकर प्रेम स्तुत्यर्थ है—'मया तु संचितं वन्यम्' (74/17) मैंने आपके लिए विविध वन्य फल संचित किए हैं। यही वस्तुस्थिति है।" रामायण में इस प्रसंग में लिखा है—

> मया तु सञ्चितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ।
> तवार्थे पुरुषव्याघ्र पपायास्तीर संभवम्॥ अरण्य 74/17

अर्थात् हे नरकेसरी! पंपासर के तट पर पैदा होने वाले ये फल मैंने आपके लिए संचित कर रक्खे हैं।

अध्यात्म रामायण में भी 'फलान्यमृत कल्पानि ददौ रामाय भक्तितः' इत्यादि लिखा है।

रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने इतना ही लिखा है—

> कन्द मूल फल सुरस अति दिये राम कहुँ आनि।
> प्रेमसहित खाये प्रभु बारंबार बखानि॥ अरण्य० 4।

हाँ, पद्मपुराण में अवश्य लिखा है—

> फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च।
> स्वयमासाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च॥

परन्तु इस श्लोक में 'स्वयमासाद्य' का अर्थ सभी ने यह किया है कि वह जिस पेड़ के फल तोड़ती थी, उस पर के दो-एक को चख कर देखती थी कि वे ठीक हैं या नहीं। इस प्रकार खट्टे-मीठे का परीक्षण करके वह मीठों को अपनी

टोकरी में डालती जाती थी और खट्टों को छोड़ती जाती थी। हमें (लेखक को) बचपन में अनेक बार आम के बागों में जाकर इसी प्रकार परीक्षण कर-करके आम खाने का अवसर मिला है। इस और ऐसे ही किसी अन्य अवतरण का यह अर्थ करना कि शबरी प्रत्येक फल को चख-चख कर राम को खिलाती थी, सर्वथा असंगत है।

मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है—नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यात्" (2/56)। मनुस्मृति के टीकाकारों में सर्वाधिक प्रामाणिक कुल्लूकभट्ट ने इस पर अपनी टिप्पणी में लिखा है—"अनेनैव सामान्यनिषेधेन शूद्रस्याप्युच्छिष्टदाननिषेधः।" जब शास्त्र शूद्र को भी जूठा अन्न देने का निषेध करता है तो राम और लक्ष्मण जैसे प्रतिष्ठित अतिथियों को जूठा खिलाने की कल्पना कैसे की जा सकती है? जैसे किसी को अपना जूठा खिलाने का निषेध है, वैसे ही किसी का झूठा खाना भी निषिद्ध है।

विधि-निषेध या धर्माधर्म के विषय में राम मनुस्मृति को ही प्रमाण मानते थे। वालिवध के प्रसंग में जब बालि की आपत्तियों का राम से अन्यथा उत्तर न बन पड़ा तो उन्होंने मनु की (जो उन्हीं के पूर्वजों में थे) शरण ली और कहा—

श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तत्तथा चरितं मया ॥ कि० 18/30-31

सदाचार के प्रसंग में मनु ने दो श्लोक लिखे हैं। धर्मात्मा लोग उनके अनुसार आचरण करते हैं। मैंने वही किया है।

इसलिए यदि शबरी ऐसी भूल कर बैठती तो निश्चय ही राम खाने से इन्कार कर देते। अतः शबरी से सम्बन्धित यह किंवदन्ती प्रमाण एवं तर्कविरुद्ध होने से मिथ्या है। आख्यायिका गुणवाद होकर भक्ति की प्रशंसा मात्र में पर्यवसित होती है।

सीता की उत्पत्ति

जनक के हल जोतने पर भूमि के अन्दर फाल का टकराना तथा उससे एक कन्या का पैदा होना और फिर उसी का नाम सीता रखना आदि असंभव होने से प्रक्षिप्त है। इस विषय में प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् स्वामी करपात्री जी ने स्वरचित 'रामायण मीमांसा' में लिखा है—"पुराणकार किसी व्यक्ति का नाम समझाने के लिए कथा गढ़ लेते हैं। जनक पुत्री सीता के नाम को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने वैदिक सीता (=हलकृष्ट भूमि) से सम्बन्ध जोड़कर उसका जन्म ही भूमि से हुआ बता दिया" (पृ० 89) अथवा यह हो सकता है कि किसी ने कारणवश यह कन्या खेत में फेंक दी हो और संयोगवश वह जनक को मिल गई हो अथवा किसी ने 'खेत में पड़ी लावारिस कन्या मिली है' यह कहकर जनक को सौंप दी हो और उन्होंने उसे पाल लिया हो। महर्षि कण्व को शकुन्तला इसी प्रकार मिली थी। और प्राप्ति के समय पक्षियों द्वारा संरक्षित एवं पालित (न कि प्रसूत) होने से उसका नाम शकुन्तला रख दिया था।

धरती को फोड़कर निकलने वालों की 'उद्भिज्ज' संज्ञा है। तृण, ओषधि, तरु, लता आदि उद्भिज्ज कहलाते हैं। मनुष्य, पश्वादि जरायुज, अण्डज और स्वेदज प्राणियों के अन्तर्गत हैं। मनुष्य वर्ग में होने के कारण सीता की उत्पत्ति पृथिवी से होना प्रकृति विरुद्ध होने से असंभव है।

सीता की उत्पत्ति पृथिवी से कैसे मानी जा सकती है, जबकि वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों में उसे जनक की आत्मजा एवं औरस पुत्री तथा उर्मिला की सहोदरा कहा गया है—वर्धमानां ममात्मजाम्(बाल० 66/15); जनकात्मजे (युद्ध० 115/18); जनकात्मजा (रघुवंश 13/78)।

महाभारत में लिखा है—विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो (3/274/9)।

अमरकोश (2/6/27) में 'आत्मज' शब्द का अर्थ इस प्रकार लिखा है—आत्मनो देहाज्जातः=आत्मजः अर्थात् जो अपने शरीर से पैदा हो, वह आत्मज कहाता है। आत्मा क्षेत्र (स्त्री) का पर्यायवाची है; क्षेत्र और शरीर पर्यायवाची हैं। क्षीयते अनेन क्षेत्रम्। स्त्री को क्षेत्र इसलिए कहते हैं कि वह सन्तान को जनने से क्षीण हो जाती है। पुरुष बीजरूप होने से क्षीण नहीं होता। रघुवंश सर्ग 5, श्लोक 36 में लिखा है—

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार ।।

महामना पं० मदनमोहन मालवीय की प्रेरणा से संवत् 2000 में विक्रमद्वि-सहस्राब्दी के अवसर पर संस्थापित अखिल भारतीय विक्रम परिषद् द्वारा नियुक्त कालिदास ग्रन्थावली के संपादक मण्डल के प्रमुख साहित्याचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी ने उक्त श्लोक में आये 'आत्मजन्मानम्' का अर्थ रघु की रानी की कोख से जन्मा किया है। तब जनक की 'आत्मजा' का अर्थ पृथिवी से उत्पन्न कैसे हो सकता है ? ब्राह्म मुहूर्त में जन्म लेने के कारण रघु ने अपने पुत्र का नाम अज (अज ब्रह्मा का पर्यायवाची है, क्योंकि ब्रह्मा का भी जन्म नहीं होता) रक्खा। अज का अर्थ जन्म न लेने वाला होता है। कोई मूर्ख ही कह सकता है कि अज का यह नाम इसलिए रक्खा गया था, क्योंकि वह पैदा नहीं हुआ था।

आत्मज या आत्मजा उसी को कह सकते हैं जो स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य से स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हो, इसमें सामवेद ब्राह्मण प्रमाण है—

अङ्गादङ्गात् संभवसि हृदयादधिजायते···आत्मासि पुत्र ।।1/5/17

हे पुत्र ! तू अंग-अंग से उत्पन्न हुए मेरे वीर्य से और हृदय से पैदा हुआ है, इसीलिए तू मेरा आत्मा है। खेत से उत्पन्न होने से तो तृण, औषधि, वनस्पति, वृक्ष, लता आदि सभी आत्मज और आत्मजा हो जाएँगे और बाप-दादा की सम्पत्ति में भागीदार हो जाएँगे।

'जनी प्रादुर्भावे' से जननी शब्द निष्पन्न होता है। इससे जन्म देने वाली को ही जननी कहते हैं। पालन-पोषण करने वाली यशोदा माता कहलाती थी, परन्तु जन्म देने के कारण जननी देवकी ही कहलाती थी। वनवास काल में अत्रि मुनि के आश्रम में अनसूया से हुई बातचीत में सीता ने कहा था—

पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वाग्निसन्निधौ ।
अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ।।
अयो० 118/8-9

विवाह के समय मेरी जननी ने अग्नि के सामने मुझे जो उपदेश दिया था, उसे मैं किंचित् भूली नहीं हूँ। उन उपदेशों को मैंने हृदयंगम किया है।

क्या यहाँ विवाह के समय उपदेश देने वाली यह 'जननी' पृथिवी हो सकती है ? और क्या बेटी को विदा करते समय बिलख-बिलख कर रोने वाली पृथिवी थी ? यहाँ माता को ही जननी कहकर स्मरण किया है, पृथिवी को जननी कभी नहीं कहा। तुलसीदास जी ने तो माता=जननी का नाम भी इस चौपाई में लिख दिया—

जनक वाम दिसि सोह सुनयना ।
हिमगिरि संग बनी जिमि मैना ॥

रामचरितमानस बालकाण्ड 356/2

(विवाह वेदी पर) सुनयना (महारानी) महाराजा जनक की बाईं ओर ऐसी शोभायमान थीं, मानो हिमाचल के साथ मैना (पार्वती की माता) विराजमान हों।

पाणिग्रहण संस्कार के समय जिस प्रकार रामचन्द्र जी की पीढ़ियों का वर्णन किया गया उसी प्रकार सीता की भी 22 पीढ़ियों का वर्णन किया गया। यदि सीता की उत्पत्ति पृथिवी से हुई होती तो पृथिवी से पहले की पीढ़ियाँ कैसे बनतीं ? इसे शाखोच्चार कहते हैं । राजस्थान में विवाह के अवसर पर दोनों पक्षों के पुरोहित आज भी 22 के ही नहीं, 30-40 पीढ़ियों तक के नामों का उल्लेख करते हैं । साधारणतया सौ वर्ष में चार पुरुष समझे जा सकते हैं । इस प्रकार 40 पीढ़ियों में लगभग एक हजार वर्ष बनते हैं । अर्थात् सर्वसाधारण लोग भी मुहाँमुही सैंकड़ों वर्षों के पारिवारिक इतिहास का ज्ञान रख सकते थे । जिसका 22 पीढ़ियों का क्रमिक इतिहास ज्ञात है उसे कीड़ों-मकौड़ों या पेड़-पौधों की तरह पृथिवी से उत्पन्न हुआ नहीं माना जा सकता । वस्तुतस्तु सीता के पृथिवी से उत्पन्न होने सम्बन्धी गप्प का स्रोत विष्णु पुराण, अंश 4, अध्याय 4, वाक्य 27-28 है जिसका बाल्मीकि रामायण में प्रक्षेप कर दिया गया है । जन्म को पृथ्वी से मानकर सीता का अन्त भी पृथिवी में समाने की कल्पना करके ही किया गया है ।

अयोनिजा—सीता को अनेक स्थलों में अयोनिजा कहा गया है । पृथिवी से उत्पन्न होने का अर्थ माता-पिता के बिना अर्थात् स्त्री-पुरुष के संयोग के बिना उत्पन्न होना है । इसी को अयोनिज सृष्टि कहते हैं, क्योंकि इसमें गर्भाशय से बाहर निकलने में योनि नामक मार्ग का प्रयोग नहीं होता। सृष्टि के आदि काल में समस्त सृष्टि अमैथुनी होती है—अर्थात् नर-नारी के परस्पर संयोग के बिना ही जीव देह धारण करते हैं। इसी को ऐश्वरी सृष्टि भी कहते हैं, क्योंकि उस समय सृष्टि के निमित्त कारण के रूप में केवल ईश्वर विद्यमान रहता है—'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे'।

सृष्टि चाहे अमैथुनी हो या मैथुनी—प्राणियों के शरीरों की रचना परमेश्वर सदा माता-पिता के संयोग से ही करता है । दोनों में अन्तर केवल इतना है कि आदि सृष्टि में माता=जननी यह पृथिवी होती है और वीर्य-संस्थापक सूर्य । ऋग्वेद (1/164/3) में कहा है—"द्यौर्मे पिता जनिता माता पृथिवी महीयम् ।" अर्थात् सृष्टि के आदि काल में प्राणियों के शरीरों का उत्पादक पिता रूप में सूर्य था और माता रूप में यह विशाल पृथिवी । परमात्मा ने सूर्य

और पृथिवी—दोनों के रज-वीर्य के सम्मिश्रण से प्राणियों के शरीरों को बनाया। जैसे इस समय बालक माता के गर्भ जरायु में पड़ा माता के शरीर में रस लेकर बनता और विकसित होता है, वैसे ही आदि सृष्टि में पृथिवी रूपी माता के गर्भ में बनता रहता है। जैसे-जैसे गर्भ बढ़ता है, वैसे-वैसे भूमि की मिट्टी संकुचित होकर उसे अधिकाधिक स्थान देती रहती है। रज-वीर्य भी तो अन्ततः परमाणुओं एवं मूलतः सत्त्व-रजस्-तमस् का ही विकार हैं।

इस प्रक्रिया को एक वृक्ष के उदाहरण से समझना आसान होगा। बिना बीज के वृक्ष नहीं उगता—इसे सभी स्वीकार करते हैं। बीज पेड़ पर उत्पन्न होते हैं और आगे होने वाले वृक्षों को उत्पन्न करते हैं। परन्तु सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न सबसे पहले पेड़ का बीज कहाँ से आया? वस्तुतः जिन तत्त्वों से बीज का निर्माण होता है वे प्रकृति में सदा विद्यमान हैं। वे भौतिक तत्त्व एक खोल के भीतर प्रकृति-गर्भ में संकलित होकर पोषण पाते रहे और पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो अनुकूल अवसर आने पर अंकुर के रूप में प्रस्फुटित हुए। इस प्रकार सबसे पहले उत्पन्न होने वाले किसी भी वृक्ष के बीज का निर्माण प्रकृति के गर्भ में ईश्वर द्वारा निर्धारित नियम व व्यवस्थाओं के अनुसार स्वतः हुआ। यही अयोनिज अथवा अमैथुनी सृष्टि की प्रक्रिया है। ईश्वरीय व्यवस्था में तत्त्वों द्वारा निर्मित बीज की बनावट वैसी ही रही होगी जैसी हमें उस वृक्ष विशेष से उत्पन्न होने वाले बीजों की आज दीख पड़ती है।

मैथुनी सृष्टि में नर-मादा का संयोग प्राणी के प्रजनन की जिस स्थिति को आज प्रस्तुत करता है वही स्थिति अमैथुनी सृष्टि में प्राकृत नियमों व व्यवस्थाओं के अनुसार प्रकृति के गर्भ में प्रस्तुत हो जाती है। वर्तमान में वैज्ञानिकों द्वारा ट्यूब आदि के द्वारा मानव शरीर के लिए किया जा रहा प्रयास इसी प्रक्रिया का द्योतक है।

सर्ग का चालू काल ईश्वरीय व्यवस्थाओं के अनुसार चालू होता है और अयोनिज शरीरों का निर्माण होता है। तदनन्तर सजातीय प्रजनन का नियम चालू होता है। जो कार्य पहले प्राकृतिक व्यवस्थाओं के अनुसार जीव से अतिरिक्त सत्ता के द्वारा होता था वह अब नर-मादा के संयोग से होकर योनिज शरीरों की सृष्टि के रूप में स्वयं प्राणियों द्वारा होने लगता है। आरम्भ में साँचा बनाना कठिन भी होता है और कष्टसाध्य भी। साँचा तैयार हो जाने पर उसके अनुरूप वस्तुओं का निर्माण करने में विशेष कठिनाई नहीं होती। आदि सृष्टि में अनेकानेक शरीरों के रूप में साँचे तैयार करना ईश्वर का काम था। तदनन्तर उन साँचों में ढाल-ढाल कर नित नये शरीर बनाते रहना जीवों का काम है।

सीता का जन्म सृष्टिक्रम चालू होने और साँचे तैयार होने के बाद त्रेता युग में हुआ था, अतः सीता के अयोनिजा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जनक उनके पिता थे और रामचरितमानस के अनुसार सुनयना उनकी माता का नाम था।

सीता स्वयंवर

हमारी सियाकुमारी ऐसी बलिष्ठ वीरांगना थीं कि प्रतिदिन सारे घर में झाड़ू लगाती थीं और जिस कमरे में धनुष रक्खा था, जब वहाँ लीपने जातीं तो बाएँ हाथ से धनुष उठाकर थामे रहतीं और दाएँ हाथ से उसके नीचे का फ़र्श लीप कर वहीं रख देती थीं। कितना बड़ा था वह धनुष ? वाल्मीकि रामायण में लिखा है—जब राम-लक्ष्मण को दिखाने के लिए वह धनुष बाहर लाया गया तो—

नृणां शतानिपञ्चाशद् व्यायतानां महात्मनाम् ।
मञ्जूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथंचन ।।

वह धनुष आठ पहियों वाली लोहे की पेटी में रक्खा था और पाँच हज़ार वीर पुरुष किसी प्रकार उसे खींचकर लाए।

जनक यह सब देखते तो सोचते कि ऐसी बेटी तो ऐसे शूरवीर को सौंपनी चाहिए जो इस धनुष को केवल उठाये ही नहीं, तोड़ भी दे। तभी जोड़ी ठीक बैठेगी। यह वह धनुष था जिसे स्वयंवर सभा में रावण हिला तक नहीं सका। इससे स्पष्ट है कि सीता की अपेक्षा रावण बहुत कमज़ोर था।

जब रावण की अपेक्षा सीता में कहीं अधिक शक्ति थी तो वह सीता को ज़बरदस्ती कैसे उठा ले जा सकता था ? इसका परिहार करने के लिए लोगों ने मनमानी कल्पनाएँ कर डालीं। किसी ने कहा कि जिस सीता को रावण उठा ले गया था वह तो नकली सीता थी, असली तो एक गुफ़ा में सुरक्षित थी।

किसी कवि की कल्पना के अनुसार जब हरिण (स्वर्ण मृग) का रूप धारण किए हुए मारीच ने मरते समय 'हा राम ! हा लक्ष्मण !' की पुकार की और लक्ष्मण को सीता को अकेली छोड़कर जाना पड़ा था तो वह धनुष की नोक से एक रेखा खींचकर सीता को किसी भी अवस्था में बाहर न आने का आदेश दे गए थे। यदि सीता इस रेखा को पार न करतीं तो रावण उन्हें उठाकर नहीं ले जा सकता था। यह रेखा 'लक्ष्मण रेखा' के नाम से प्रसिद्ध है और लोक व्यवहार में सीमा के अर्थ में इसका प्रयोग होता है। परन्तु वाल्मीकि रामायण में ही नहीं, तुलसी के रामचरितमानस में भी इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। सीता के अत्यधिक आग्रह करने पर लक्ष्मण—'गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वाति तेऽस्तु वरानने' (युद्ध० 45/32) इतना कहकर राम के पास चल दिए।

सीता के विषय में तुलसीदास ने अवश्य एक कल्पना की। उन्होंने लिखा है—

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौं लगि करउँ निसाचर नासा ।।
जबहु राम सबु कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी ।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुविनीता ।।
अरण्य० 29/1-2

रामचन्द्र जी ने सीता से कहा—जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ तब तक तुम अग्नि में निवास करो। ज्योंही रामचन्द्र जी ने यह कहा त्योंही सीता अग्नि में समा गईं। वे अपने प्रतिबिम्ब (छायारूपिणी सीता) को वहाँ रख गईं जिसका शील और रूप बिल्कुल वैसा ही था।

इसके अनुसार रावण सीता के प्रतिबिम्ब को ले गया था, सीता को नहीं। प्रसंगवश यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि अग्नि का एक नाम 'हुताशन' है, क्योंकि उसमें कुछ डाला जाता है उसे वह भस्म कर देती है। किसी-किसी ने यहां तक कह डाला कि रावण के साथ सीता अपनी इच्छा से गई थी।

वस्तुतः मूल में भूल हो जाने के कारण एक झूठ को सच बनाने की प्रक्रिया में सौ झूठ बनाने पड़ते हैं।

प्रथम तो एक राजकुमारी के महल में झाड़ू-पोंछा लगाने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर वाल्मीकि रामायण में राजा जनक की सभा में रावण के आने का कोई उल्लेख नहीं है। तब उसके धनुष उठाने न उठाने की चर्चा कैसे हो सकती है ?

सच तो यह है कि सीता के स्वयंवर की बात ही सर्वथा मिथ्या है। स्वयंवर में कन्या बहुतों में से अपनी पसन्द के अनुरूप किसी एक को अपने पति के रूप में चुनती है—उसका वरण करती है। वीर्यशुल्का होने के कारण सीता अपनी पसन्द के अनुरूप पति का चुनाव करने में स्वतन्त्र नहीं थी। स्वयं जनक के शब्दों में उसका विवरण इस प्रकार है—

वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुङ्गव।
तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ।।
वीर्य शुल्केति भगवन् न ददामि सुतामहम्।
ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुङ्गव ।।
मिथिलामभ्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा।
तेषां जिज्ञासमानानां शैवं धनुरुपाहृतम् ।।
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपिवा।
तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने ।।
प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन ।।
यद्यस्य धनुषो राम, कुर्यादारोपणं मुने।
सीतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेऽहम् ।।
बाल० 66/16-19, 26

हे मुनिवर ! मेरी पुत्री सीता को कई राजाओं ने आकर माँगा। कन्या का वरण करने वाले उन सभी राजाओं को मैंने बता दिया कि मेरी पुत्री वीर्यशुल्का है। यही कारण है कि मैंने अपनी पुत्री अभी तक किसी को नहीं दी। तब सभी राजा मिलकर मिथिला में आये और पूछने लगे कि राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए शुल्करूप में क्या पराक्रम निश्चित किया है ? मैंने जिज्ञासा करने वाले उन राजाओं के सामने यह धनुष रख दिया। परन्तु उनमें से कोई भी इसे उठाने या हिलाने में समर्थ न हो सका। उन पराक्रमी नरेशों की शक्ति बहुत थोड़ी जानकर मैंने अपनी कन्या उन्हें देने से इन्कार कर दिया। यदि राम इस धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा दें तो मैं अपनी कन्या उन्हें दे दूँ। तब—

महर्षेर्वचनाद् यत्र तिष्ठति तद्धनु।
मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ।।
इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना।
यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपिवा ।।
बाढमित्यब्रवीद् राजा मुनिश्च समभाषत।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ।।
पश्यतां नृसहस्राणां रघुनन्दनः।
आरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ।।
आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः।
तद् बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ।।
मम सत्या प्रतिज्ञा सा वीर्यशुल्केति कौशिक।
सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता ।।

बाल० 67/13-17, 23

महर्षि की आज्ञा से श्रीराम ने जिसमें वह धनुष था उस पेटी को खोलकर उसमें रक्खे धनुष को देखा और कहा—"अच्छा, अब मैं इस धनुष को हाथ लगाता हूँ। इसे उठाने और प्रत्यंचा चढ़ाने का भी प्रयत्न करूँगा।" ऋषि और दशरथ की अनुमति पाकर राम ने उस धनुष को बीच से पकड़ कर, मानो खेल-खेल में, उठा लिया और सहस्रों लोगों के देखते-देखते उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। प्रत्यंचा चढ़ाकर राम ने उस धनुष को कान तक खींचा ही था कि वह बीच से टूट गया। यह देखकर जनक बोले—मुनिवर ! मैंने वीर्यशुल्का बताकर जो प्रतिज्ञा की थी, वह आज सत्य और सफल हो गई। मैं अपनी प्राणों से प्यारी बेटी सीता श्रीराम को समर्पित करूँगा।

पिता द्वारा घोषित शर्त के अनुसार जो भी धनुष तोड़ देता उसके गले में वरमाला डालने के लिए सीता बाध्य थी। इसे स्वयंवर का नाम नहीं दिया जा सकता।

विवाह के समय सीता की अवस्था

अयोध्याकाण्ड के 27वें सर्ग में लिखा है—

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्ति संप्रति वक्तव्यो वर्तितव्यं यथा मया ।। 9

किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए इस विषय में अपेक्षित उपदेश मुझे अपने माता-पिता से बहुत पहले मिल चुका है। इसलिए इस विषय में आपको मुझे कुछ समझाने की आवश्यकता नहीं है।

यह सब सीता ने राम से उस समय कहा था जब वनगमन के समय राम सीता को अपने साथ न ले जाकर घर में रहते हुए सास-ससुर की सेवा करके और भरत की आज्ञा में रहने के लिए समझा रहे थे। विवाह के बाद सीता कभी नैहर गई हो या उसके माता-पिता बेटी से मिलने कभी अयोध्या आये हों, इसका कोई उल्लेख रामायण में नहीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि विवाह के समय अथवा उससे पूर्व सीता उस अवस्था को प्राप्त कर चुकी थी जिसमें किसी कन्या को अपने पति और सास-ससुर के प्रति उसके कर्त्तव्यों का बोध कराया जा सके।

इसकी पुष्टि वनवास काल में अत्रि मुनि के आश्रम में अनसूया से हुई सीता की बातचीत से भी होती है। सीता ने मुनि पत्नी को बताया था—

पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्नि सन्निधौ।
अनुशिष्टा जनन्यास्मि वाक्यं तदपि मे धृतम् ।।
पति शुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्धि धीयते ।।

अयो० 118/8-9

विवाह के समय मेरी माता (जननी) ने अग्नि के सम्मुख जो उपदेश दिया था उसे मैं किंचित् भूली नहीं हूँ। उस उपदेश को मैंने हृदय में सुरक्षित रक्खा है। माता ने कहा था कि स्त्री के लिए पति-सेवा से बढ़कर और कोई तप नहीं है।

जब सीता स्वयंवर (वस्तुतस्तु वीर्यशुल्का होने के कारण सीता के लिए अपने पति का स्वयं वरण करने का अवसर उपस्थित नहीं हुआ) के अवसर पर विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को लेकर जनकपुरी पहुँचे तो उन दोनों भाइयों के रूप-लावण्य को देखकर जनक ने—

परिपप्रच्छ प्राञ्जलिः प्रणतो नृपः।
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यौ पराक्रमौ॥
गजसिंहगती वीरौ शार्दूल वृषभोपमौ।
पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणीधनुर्धरौ॥
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ।
यदृच्छेवगां प्राप्तौ देवलोकदिवामरौ॥
बाल० 50/17-19

आश्चर्यचकित हो हाथ जोड़कर विश्वामित्र से पूछा—हे मुनिवर ! गज और सिंह के समान चाल वाले, देवताओं के समान पराक्रमी तथा अश्विनी कुमारों के समान सुन्दर, यौवन को प्राप्त कुमार कौन हैं।

यहाँ 'समुस्थितयौवनौ' पद विशेष रूप से द्रष्टव्य है। इससे सर्वथा विस्पष्ट है कि उस समय राम-लक्ष्मण दोनों युवावस्था में प्रवेश कर चुके थे। जनकपुरी पहुँचने से पहले मार्ग में राम अनेक राक्षसों का संहार कर चुके थे और विवाह से पूर्व ही, अनेक शूरवीरों के असमर्थ होने पर शिव धनुष को तोड़ कर अपने बल का प्रदर्शन कर चुके थे। इससे राम के अतुल बलशाली होने के साथ ही उनका यौवन प्राप्त होना प्रमाणित होता है।

जब विश्वामित्र ने राजकुमारों की धनुष देखने की इच्छा व्यक्त की तो जनक ने सीता के विवाह के सन्दर्भ में धनुष भंग की चर्चा करते हुए कहा—

भूतल्लादुत्थितां तां तु वर्द्धमानां ममात्मजाम्।
वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुङ्गवाः॥ बाल० 66/15

जब मेरी कन्या सीता 'वर्द्धमाना'=प्राप्तयौवना हुई तो बहुत-से राजा उसका हाथ माँगने आने लगे। पर (धनुष न उठा सकने के कारण) सब असफल रहे।

मूल श्लोक में 'वर्द्धमाना' शब्द है। टीकाकारों में किसी ने इसका अर्थ 'यौवन-संपन्ना' किया है और किसी ने 'प्राप्तयौवना'। इससे इतना तो पता चलता ही है कि 'समुपस्थित यौवन' राम के साथ जब सीता का विवाह हुआ था तो विवाह से पूर्व उसके शरीर में यौवन का सूत्रपात हो चुका था। 'वर्द्धमाना' का अर्थ यहाँ 'बढ़ती हुई' न होकर 'प्राप्तयौवना' ही संगत है, यह अयोध्याकाण्ड में आये निम्न श्लोक से प्रमाणित है—

पतिसंयोगसुलभा वयोऽवेक्ष्य पिता मम।
चिन्ताभम्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः॥ 118/34

सीता ने अनसूया से कहा—पिता ने जब मेरी पति संयोग सुलभ अवस्था

देखी तो उनको बड़ी चिन्ता हुई। मेरे पिता को वैसा ही दुःख हुआ जैसा किसी दरिद्र को धन का नाश होने पर होता है।

'पति-संयोग-सुलभ वयस्' का सीधा अर्थ 'विवाह योग्य वयस्' अर्थात् 'गर्भाधान में समर्थ' है। इसकी अवस्था के विषय में सुश्रुत संहिता में लिखा है—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तो षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तो जानीयात् कुशलो भिषक्॥

पुरुष के लिए यह अवस्था 25 वर्ष का होने पर और स्त्री के लिए 16 वर्ष की होने पर आती है।

विवाह संपन्न हो जाने पर दशरथ ने अपनी पुत्रवधुओं के साथ अयोध्या में प्रवेश किया। तब

अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा।
रेमिरे मुदिताः सर्वाः भ्रातृभिः सहितारहः॥

बाल॰ 77/13-14

मंगलाचार के पश्चात् प्रसन्न हो सब राजकन्याओं ने अभिवादन के योग्य (वृद्धजनों) का अभिवादन करके एकान्त में अपने पतियों के साथ रमण किया। इसी प्रकार संसार में पराक्रम में अप्रतिम राजकुमारों ने भी रमण किया। आधुनिक (प्रचलित) भाषा में इसी को 'सुहागरात' तथा कर्मकाण्ड में 'चतुर्थी कर्म' अथवा 'गर्भाधान' कहते हैं। राम-लक्ष्मण के प्राप्तयौवन होने का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पतियों के साथ एकान्त में रमण करने से सीता आदि के प्राप्तयौवना होने और प्राप्तयौवना होने से उनकी अवस्था का सहज हो अनुमान किया जा सकता है। सोलह वर्ष से कम तो हो ही नहीं सकती।

जो कुछ बालकाण्ड (77/13-14) में कहा गया है उसकी पुष्टि किंचिद् भिन्न शब्दों में अयोध्याकाण्ड के निम्न श्लोक से भी होती है—

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देव समन्विताः।
स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्व-स्व मन्दिरे॥7/52

अयोध्या पहुँचने पर सबसे मिलने-जुलने के बाद देव प्रतिभ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अपनी-अपनी पत्नियों को लेकर अपने-अपने महल में रमण करने लगे।

सीता को जबरदस्ती 6 वर्ष की सिद्ध करने के लिए कोई-कोई दुराग्रही लोग 'रेमिरे' शब्द को यहाँ खेलने-कूदने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ बताते हैं। रमणी को 'रमणी' इसलिए कहते हैं कि उसमें रमण किया जाता है—'रमयति रम्यते वा अस्यां वा रम्यते' (अमर 2/6/3) और एक घर से आए 6-6 साल के बच्चे परस्पर

मिल-जुल कर खेलेंगे या अकेले-अकेले एकान्त में खेलेंगे और वह भी अनजाने बड़े-बड़े पुरुषों के साथ ?

अरण्यकाण्ड में सीता के अपहरण के लिए आए रावण को अपना परिचय देते समय सीता कहती है—

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने ।
भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ।।
मम भर्त्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ।।47/4,10

बारह वर्ष ससुराल में रहकर, समस्त भोगों का उपभोग करके मैं राम-लक्ष्मण के साथ वन में आई हूँ । मेरे तेजस्वी स्वामी राम की अवस्था उस समय पचीस वर्ष थी और मेरी अठारह वर्ष । रामायण के किसी-किसी संस्करण में पंचविंशक के स्थान में सप्तविंकशः पाठ भी मिलता है । वनगमन के समय कौशल्या ने राम से कहा था—"दशसप्त च वर्षाणि तव जातस्य राघव"(अयो० 20/45) अर्थात् तेरा जन्म (द्विजों में उपनयन संस्कार के द्वारा दूसरा जन्म) हुए 10 + 7 = 17 वर्ष हुए । 'एकादशेराजन्यम्' (रघुकुल में मान्य परम्परा के अनुसार) क्षत्रिय का उपनयन संस्कार 11 वर्ष की आयु में होता था । इस प्रकार रामायण के अनुसार वनगमन के समय 11 + 17 = 28 वर्ष के थे ।

सीता ने रावण के साथ हुई अपनी बातचीत में वन में आने के समय अपनी अवस्था 18 वर्ष बताई है और वन के लिए प्रस्थान ससुराल में 12 वर्ष बिताने के बाद बताया है । इस प्रकार ससुराल में आने अर्थात् विवाह होने के समय सीता की अवस्था मात्र 6 वर्ष ठहरती है, जो ऊपर दिए गए विस्तृत विवरण के आधार पर नितान्त अशुद्ध सिद्ध होती है । 6 वर्ष की लड़की न पति-संयोग-सुलभ-वयः होती है और न पति के साथ रमण कर सकती है और न पति, सास, ससुर आदि के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझ सकती है, उनका पालन करना तो बहुत दूर की बात है ।

फिर अध्यात्मरामायण (बालकाण्ड, अध्याय 6, श्लोक 29-31) में सीता को 'स्मितवक्त्रा, सर्वाभूषणभूषिता, मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः कणञ्चलितनूपुरास्मय-वदना तथा वस्त्रान्तरव्यञ्जितस्तनी' कहा है । क्या यह वर्णन 6 वर्ष की खेलती-कूदती बालिका का हो सकता है ? यहाँ सर्वाधिक विचारणीय पद है—वस्त्रान्त-रव्यञ्जिस्तनी' । क्या 6 वर्ष की बालिका के स्तन पहने हुए वस्त्र (चोली) के भीतर से झाँक सकते हैं ?

राम का वन से प्रत्यागमन

राम के वनगमन का पता भरत को ननिहाल से अयोध्या लौटने पर चला। वह तुरन्त बन्धु-बान्धवों सहित राम को अयोध्या लौटाने के लिए चित्रकूट जा पहुँचे। पर अनेक प्रकार से तर्क-वितर्क और अनुरोध किए जाने पर भी राम अयोध्या लौटने को तैयार नहीं हुए। विवश होकर भरत को खड़ाऊँ लेकर ही सन्तोष करना पड़ा। परन्तु चलते समय भरत ने घोषणा कर दी—

चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनिरघूतम।
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।।

अयोध्या 112/25-26

अर्थात्—हे रघुकुलश्रेष्ठ ! जिस दिन चौदह वर्ष पूरे होंगे, उस दिन यदि आपको अयोध्या में नहीं देखूंगा तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा, अर्थात् आत्मदाह द्वारा प्राण त्याग दूंगा। इस पर रामचन्द्र जी ने 'तथेति प्रतिज्ञाय' ऐसा ही होगा अर्थात् '14 वर्ष की समाप्ति के दिन अयोध्या पहुँच जाऊँगा' यह प्रतिज्ञा की।

राम के लिए प्रसिद्ध है—"द्विः शरं नाभिसन्धत्ते रामो द्विर्नाभिभाषते"—राम न दुबारा बाण चढ़ाते थे और न दुबारा बोलते थे। अर्थात्—एक ही बाण से शत्रु को यमलोक पहुँचा देते थे (इसीलिए एक ही खुराक में रोगमुक्त कर देने वाली ओषधि को रामबाण ओषधि कहते हैं) और एक बार जो कह देते थे उस पर दृढ़ रहने के कारण 'सत्यवाक्, सत्यसन्ध' (बाल० 1/2,12) कहाते थे। इससे स्पष्ट है कि राम की 14 वर्ष की समाप्ति के दिन ही अयोध्या लौटने की प्रतिज्ञा में एक दिन का भी विपर्यास नहीं हुआ।

यह सभी जानते और मानते हैं कि जिस दिन रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक होना था उसी दिन उन्हें 14 वर्ष के लिए वनवास की यात्रा करनी पड़ी। इसलिए राम के राज्याभिषेक की तिथि का निश्चय होने पर उनके अयोध्या लौटने की तिथि का निश्चय हो जाएगा, क्योंकि उसी दिन 14 वर्ष पूरे होंगे। राज्याभिषेक के सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण के अनुसार महाराजा दशरथ के पूछने पर महर्षि वसिष्ठ ने कहा था—

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ।। अयो० 3/4

पुष्पित हो गए हैं वन जिसमें, ऐसी शोभा-कान्ति से युक्त यह पवित्र चैत्र

मास है, इसलिए राम के राज्याभिषेक के लिए सब प्रकार की तैयारी करो।

ज्योतिष शास्त्र की गणना के अनुसार पुष्य नक्षत्र चैत्र मास शुक्ल पक्ष में आता है। इस प्रकार राज्याभिषेक के चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में होने का निश्चय हो जाने पर श्रीराम का 14 वर्ष बाद चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में अयोध्या लौटना स्वतः सिद्ध है। मास का निश्चय हो जाने पर तिथि का निर्धारण करना शेष रहता है। इसका पता हमें युद्धकाण्ड में मिलता है। वहाँ लिखा है—

> पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।
> भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम्॥ युद्ध० 127/1

अर्थात् 14 वर्ष पूरे हो जाने पर लक्ष्मण के बड़े भाई (राम) पंचमी तिथि को भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे और विधिपूर्वक मुनि को प्रणाम किया। प्रसन्नचित्त मुनिवर ने राम से कहा—"अर्घ्यमद्यगृह्यणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि" (127/17)—आज आप यहाँ अर्घ्य ग्रहण करें और 'कल' अयोध्या जाएँ। तदनुसार राम तो उस दिन भरद्वाज आश्रम में ठहरे रहे, पर श्रीराम से आदेश पाकर हनुमान गरुड़ के वेग से चल कर अयोध्या जा पहुँचे और भरत से भेंट होने पर बोले—"अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि" (129/53), कल राम को आप पुष्य नक्षत्र में यहाँ देखेंगे। हनुमान ने यह बात भरत से पंचमी के दिन कही, तब 'कल' से स्पष्टतः 'षष्ठी' अभिप्रेत है। इस प्रकार राम के राज्याभिषेक का और 14 वर्ष बाद उनके अयोध्या में प्रत्यागमन का चैत्र शुक्ला षष्ठी के दिन होना सर्वथा सिद्ध है।

सुग्रीव की सहायता से सीता की खोज के आरम्भ से लेकर रावण-वध तक के घटनाक्रम से भी यही निष्कर्ष निकलता है। बालि-वध के पश्चात् अंगद के युवराज पद पर अभिषिक्त किए जाने के अवसर पर रामचन्द्र सुग्रीव से बोले—

> पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः।
> प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिक संज्ञकाः॥
> नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम्।
> अस्मिन् वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सह लक्ष्मणः॥
> कार्त्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत।
> एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम्॥
> कि० 26/14,15,17

अर्थात्—हे सौम्य! यह वर्षा काल का चौमासा उपस्थित हो गया है जिस चौमासे का वर्षा करने वाला यह पहला मास है। इसलिए यह किसी प्रकार के उद्योग का समय नहीं है। इसलिए इस समय तुम अपनी किष्किन्धापुरी में प्रवेश करो। (वर्षा ऋतु की समाप्ति पर) कार्त्तिक मास के आरम्भ में रावण के वध का

प्रयत्न करना। यही हम लोगों का निश्चय है। हे सौम्य ! अब तुम अपने घर में जाकर रहो।

तब तक मैं भी लक्ष्मण के साथ इस पर्वत पर रहूँगा।

वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर जब राम ने देखा कि सीता की खोज के निमित्त सुग्रीव की ओर से कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा—

अन्योन्यं बद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज।
उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः॥
इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं वा तथा विधम्॥
स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे।
कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुध्यते॥
अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः॥
कृतार्थाह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते॥
वर्षाः समयकालं तु प्रतिज्ञाय हरीश्वरः।
व्यतीतांश्चतुरो मासान् विहरन्नावबुध्यते॥
नायं संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः॥

कि० 30/62, 63, 69, 71, 73, 78, 81

एक दूसरे से वैर रखने वाले विजयाकांक्षी राजाओं के उद्योग का समय आ गया है।

राजाओं के लिए यात्रा का समय आ गया है, किन्तु सुग्रीव ऐसा कोई उद्योग करता दिखाई नहीं पड़ रहा है। सीता की खोज के लिए उसने समय की अवधि दी थी। अपना काम निकल जाने पर वह दुर्मति, अवधि बीत जाने पर भी ध्यान नहीं दे रहा है। किसी आशा को लेकर आए हुए तथा जिसने पहले उपकार किया हो, ऐसे उपकारी व्यक्ति को आश्वासन देकर जो आशा और प्रतिज्ञा को भंग करता है, वह संसार में अधम पुरुष कहाता है। अपना मनोरथ सिद्ध हो जाने पर जो मित्रों के मनोरथ को पूरा नहीं करता, मृत्यु के पश्चात् उस कृतघ्न पुरुष के मांस को मांसाहारी पशु-पक्षी भी नहीं खाते। सुग्रीव ने वर्षा के चातुर्मास के पश्चात् सीता की खोज का वचन दिया था। वे चार मास बीत गए हैं, किन्तु विषयभोग में लिप्त सुग्रीव इसे नहीं जान रहे हैं। सुग्रीव से यह भी कह दो कि

जिस रास्ते से मारा जाकर बाली गया है, वह रास्ता अभी बन्द नहीं हुआ है। अपने वचन का पालन करो, बाली के मार्ग के पथिक मत बनो।

श्रावण से कार्तिक तक चार मास होते हैं। इसका अर्थ यह है कि सुग्रीव ने राम की डाँट खाकर आश्विन के अन्त में अपने सहायकों या कर्मचारियों को सीता की खोज में प्रवृत्त किया। इसकी पुष्टि आगे चलकर 53वें सर्ग में आए एक अन्य श्लोक से भी होती है। वहाँ कहा है—

वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः।
प्रस्थिताः सोऽपि चातीतः किमतः कार्यमुत्तरम्॥ कि० 53/22

अर्थात्—हम लोग तो सीता के अन्वेषण की प्रतिज्ञा करके आश्विन मास में निकले थे। वह समय तो बीत गया, अब आगे हम क्या करें।

वर्षा के चार मास तो श्रावण से कार्तिक तक बनते हैं, किन्तु वास्तव में वर्षा का अन्त आश्विन में हो जाता है। उस समय का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है—

फूले कास सकल महि छाई। जनु वर्षाकृत प्रगट बुढ़ाई॥

सारी पृथिवी पर काँस फूल कर छा गये। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वर्षा का बुढ़ापा आ गया है। वर्षा का बुढ़ापा देख राजा लोग निश्चिन्त होकर विजय यात्राओं के लिए निकल पड़ते थे। आश्विन मास में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाने वाला दशहरा का पर्व उसी का प्रतीक है।

सीता की खोज के अभियान पर जाने वालों को सुग्रीव ने कह दिया था—

ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् बध्यो भवेन्मम।
सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम्॥ कि० 40/70
यस्तु मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति।
मत्तुल्यो विभवो भोगैः सुखं च विहरिष्यति॥ कि० 41/47

अर्थात्—एक मास से अधिक तुम लोग वहाँ न ठहरना। इस आदेश का उल्लंघन करने वाले प्राणदण्ड के भागी होंगे। जानकी का पता लगाकर और सफल मनोरथ होकर लौटो।

जहाँ समय पर न लौटने वाले अथवा असफल लौटने वाले दण्ड के भागी होंगे, वहाँ जो कोई व्यक्ति एक मास के भीतर लौटकर 'मैंने सीता को देखा है' सबसे पहले कहेगा, वह मेरे समान वैभव का अधिकारी होगा और सुखपूर्वक विहार करेगा।

सीता को खोजने गए लोग स्वयं भटक गए और एक गुफा में जा फँसे। जब वे किसी प्रकार उसमें से निकलने में सफल हुए तब तक बसन्त ऋतु का आगमन हो

चुका था और सुग्रीव द्वारा निर्धारित अवधि बीत चुकी थी—

ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिबुद्ध्वा परस्परम्।
नष्टसन्देशकालार्था निपेतुर्धरणीतले ॥53/18

इसलिए निर्दिष्ट कार्य को समय पर न कर पाने के कारण भयभीत होकर (किष्किन्धा लौटने पर मृत्युदण्ड अपरिहार्य था) धरती पर लोटने लगे।

सीता के अपहरण के पश्चात् राम की विरह वेदना का वर्णन करते हुए वाल्मीकि लिखते हैं—

अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनिनादितः।
सीतायां विप्रहीणस्य शोकसंदीपनो मम ॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुपूर्वाभिभाषिणी।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥ कि० 1/22,50

हे लक्ष्मण ! नाना प्रकार के पक्षियों से निनादित यह वसन्त सीता से वियुक्त मेरे शोक को और भी वियुक्त कर रहा है। मधुरभाषिणी, कमलनयनी निश्चय ही इस वसन्त ऋतु को प्राप्त होकर अपने प्राण त्याग देगी।

उधर लंका में सीता को आतंकित करते हुए रावण ने कहा—

प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः।
शृणु मैथिलि मासान् द्वादश भामिनि ॥
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि।
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्तिलेशशः ॥
अरण्य० 56/24-25

हे मिथिला की राजकुमारी जानकी ! मेरी इस बात को सुनो। हे भामिनि ! मैं तुम्हें 12 मास का समय देता हूँ। हे सीते ! यदि इस अवधि के भीतर तुमने मुझे स्वीकार नहीं किया तो मेरे पाचक मेरे आतराश के लिए तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।

बारह मास की अवधि पूरी होने में जब दो मास रह गये तो एक बार फिर रावण ने सीता से भेंट की और चेतावनी दी—

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥
ताभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छन्तीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥ सुन्दर० 22/8-9

अर्थात् हे सीता ! मैंने जो अवधि तेरे लिए निश्चित की थी उसमें से दो मास

के भीतर मेरी शय्या पर आरोहण करो। दो मास बीतने पर यदि तुम मुझे पतिरूप में स्वीकार नहीं करोगी तो मेरे पाचक मेरे प्रातराश के लिए तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।

तब सीता आत्मघात का निर्णय करके विलाप करने लगी। ऐसी स्थिति में वहाँ हनुमान का प्रादुर्भाव हुआ। परस्पर वार्तालाप के अन्त में सीता ने हनुमान को बताया—

> द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः।
> ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ सु० 33/31

रावण ने कृपा करके मुझे दो मास और जीने का अवसर दिया है। दो मास के पश्चात् मैं अपने प्राण त्याग दूंगी।

पुनः राम के नाम अपने सन्देश में सीता ने कहा—

> स वाच्यः संतरस्वेति यावदेव न पूर्यते।
> अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥
> वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषो प्लवङ्गम।
> रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ सुन्दर 37/7-8

मेरा यह सन्देश रामचन्द्र जी से कह देना कि मेरे उद्धार के लिए शीघ्र प्रयत्न करें, जब तक इस वर्ष की अवधि की समाप्ति नहीं होती, क्योंकि इस वर्ष का अन्त ही मेरे जीवन की अवधि है। वर्ष की अवधि का दसवाँ मास बीत रहा है। केवल दो मास शेष रहे हैं।

हनुमान ने लंका से रामचन्द्र जी के पास लौटकर सीता का सन्देश देते हुए कहा—

> जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज।
> ऊर्ध्वं मासान्नजीवेयं रक्षसां वशमागता ॥ सुन्दर० 65/24

हे आर्यपुत्र राम ! किसी तरह एक मास तक जीवित रह पाऊँगी। एक मास के पश्चात् राक्षस के वश में पडी मैं प्राण त्याग दूंगी।

इतना सुनकर रामचन्द्र रुदन करते हुए लक्ष्मण से बोले—

> चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धारयिष्यति।
> न जीवेयं क्षणमपि विना तामसितेक्षणाम् ॥ सुन्दर 6/10

यदि सीता एक महीने तक जीवित रहेगी तो वह बहुत जियेगी। परन्तु मैं उस मृगनयनी के बिना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकूँगा।

इस प्रकार यद्यपि रावण ने दो मास तक जीवित रहने की छूट दे रक्खी थी,

राम के लिए तो उसे एक मास के भीतर ही छुड़ाना अनिवार्य हो गया। परिमाणतः राम ने तत्काल सुग्रीव को बुला भेजा और आदेश के स्वर में कहा—"अस्मिन् मुहूर्त्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचते" (युद्ध० 4/3)—मुझे इसी समय चढ़ाई करना उचित प्रतीत होता है। यह भी कहा कि—

सीता श्रुत्वाऽभियानं मे आशामेष्यति जीविते।
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वामृतमिवातुरः॥ युद्ध० 4/5

मेरी चढ़ाई का समाचार सुनकर जीवन के प्रति उसी प्रकार आशान्वित होगी जिस प्रकार रोगी मरणकाल में अमृत का स्पर्श और पान करके आशान्वित होता है। पुनः बोले—

उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः॥ युद्ध० 4/6

आज उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र है, कल हस्त नक्षत्र से इसका योग होगा। हे सुग्रीव! इस समय पूरी सेना लेकर चढ़ाई कर दो।

इस प्रकार फाल्गुन मास में राम ने पूरे दल-बल के साथ लंका की ओर प्रयाण किया। युद्ध होने लगा। तब एक दिन रावण के सुपार्श्व नामक मन्त्री ने रावण को परामर्श दिया—

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशीम्।
कृत्वा निर्याह्यमावस्यां विजयाय बलैर्वृतः॥ युद्ध० 93/15

तुम आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उद्योग आरम्भ करके कल अमावस्या को सेना से युक्त होकर विजय के लिए निकलो। इस प्रकार चैत्र मास की अमावस्या को रावण मारा गया था। स्कन्द तथा पद्मपुराणों में राम-रावण युद्ध के तिथिवार दिये गए ब्यौरे के अनुसार भी यही तिथि ठहरती है।

रावण की अन्त्येष्टि, विभीषण का राज्याभिषेक आदि कार्यों से निवृत्त होकर राम चैत्र शुक्ला पंचमी को भरद्वाज आश्रम में और षष्ठी को अयोध्या=नन्दिग्राम में पहुँच गए थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विजयादशमी अथवा दशहरा का रावण-वध या लंका-विजय से कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर मिथ्या कल्पना की उद्भावना किस प्रकार हुई? ऐसा अनुमान होता है कि विजयादशमी मुख्यतः क्षत्रियों का पर्व होने से उस अवसर पर विभिन्न रूपों में शौर्य प्रदर्शन होता था। उसी प्रसंग में उसे नाटक का रूप देकर विजयादशमी से दस दिन पूर्व रामलीला का आरम्भ होकर उसकी समाप्ति विजयादशमी के दिन की जाती थी और उसी दिन अन्तिम दृश्य के रूप में रावण का वध दिखाया जाता था। उसी से कालान्तर में यह

धारणा बद्धमूल हो गई कि वस्तुतः आज ही के दिन रामचन्द्र जी द्वारा रावण का वध होकर लंका पर विजय प्राप्त हुई थी।

इसी क्रम में यह भी कल्पित कथा चल पड़ी कि इस दिन रामचन्द्र जी वनवास से लौटकर अयोध्या लौटे थे और उनकी प्रजा ने हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति के रूप में दीपावली की थी। परन्तु जब लंकाविजय के रूप में विजयादशमी का विचार भी कपोलकल्पित है तो कार्तिक मास में उनके प्रत्यागमन के उपलक्ष्य में दीवाली मनाये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जटायु-सम्पाति

पंचवटी को जाते हुए मार्ग में जब पहली बार राम ने जटायु को देखा तो उसे राक्षसों का ही पक्षधर समझकर उन्होंने उसका परिचय पूछा। तब जटायु—"उवाच वत्स मां विद्धि वयस्य पितुरात्मनः" (अरण्य० 14/3) बोला—हे वत्स! तुम मुझे अपने पिता का मित्र जानो। "स तं पितृसखं बुद्ध्वा पूजयामास राघवः" (अरण्य० 14/4) तब रामचन्द्र जी ने उन्हें अपने पिता का मित्र समझ कर उनका सत्कार किया। तत्पश्चात्—"स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च" (14/4) रामचन्द्र जी ने शान्त होकर उनसे उनका नाम और कुल पूछा। इस पर—

रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च।
आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ॥14/5

राम के पूछने पर उन्होंने अपना नाम और कुल बताया और साथ ही संपूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन किया। यहाँ रामचन्द्र जी के बिना पूछे ही प्राणिमात्र की उत्पत्ति का वर्णन किया जाना अप्रासंगिक तथा प्रकरणविरुद्ध तो है ही, सर्वथा वेद के विपरीत तथा सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है। जब रावण सीता को अपहरण करके ले जा रहा था तब जटायु को देख कर सीता ने पुकार लगाई—

जटायो पश्यमामार्य ह्रियमानामणाथवत्।
अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा॥
अरण्य० 49/38

हे आर्य जटायु! यह पापी राक्षसपति रावण मुझे अनाथ की भाँति उठाये ले जा रहा है। यहाँ जटायु को आर्य और द्विज कहा है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की द्विज संज्ञा है। रावण को अपना परिचय देते हुए जटायु कहते हैं—"जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराज महाबलः" (अरण्य० 50/4)। मैं गृध्रकूट का भूतपूर्व राजा हूँ और मेरा नाम जटायु है। उस समय जटायु राज-पाट का परित्याग कर वानप्रस्थ के रूप में वन में रहता था। जटायें रखने के कारण वह जटायु के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। शासक होने से वह क्षत्रिय और क्षत्रिय होने से द्विजों के अन्तर्गत था। इस प्रकार (1) आर्य होने, (2) द्विज होने और (3)

महाराज दशरथ का मित्र होने से जटायु मनुष्य वर्ग के अन्तर्गत आता है, पक्षिवर्ग के अन्तर्गत नहीं। आर्य परम्परा के अनुसार समय आने पर वह वानप्रस्थ हो गया था। यह ठीक है कि पक्षी भी द्विज कहलाते हैं, पर वे न आर्य कहलाते हैं और न दशरथ के मित्र ही होते हैं और न कहीं के राजा।

अन्यत्र (अरण्य० 50/2) जटायु के लिए 'खगेश' या 'खगोत्तम' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'ख' का अर्थ 'आकाश' प्रसिद्ध है। 'ग' का अर्थ है गमन करने वाला। तब 'खगोत्तम' का अर्थ हुआ 'आकाश में गमन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ'। आकाश में गमन उड़कर किया जाता है। इस प्रकार 'खगोत्तम' का अर्थ हुआ 'आकाश में उड़ान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ' (Best among the aeronauts).

प्राचीन काल में आर्यों का ज्ञान-विज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। रामायण काल में जहाँ पुष्पक विमान जैसे बड़े विमान (Airbus) होते थे वहीं छोटे-छोटे विमान (Monoplanes) भी होते थे जिनमें एक-दो व्यक्ति बैठ कर उड़ सकते थे। जहाँ कहीं जटायु, रावण, हनुमान आदि के उड़ने का वर्णन आता है, वहाँ उनका इसी प्रकार के विमानों से उड़ना समझना चाहिए। आजकल भी जब कोई बड़ा व्यक्ति विमान द्वारा विदेश जाता है तो कहा जाता है—He flew to London or New York. जब रावण पंचवटी में सीता का अपहरण करने गया तो अपने स्वचालित (self-driven) विमान को सीता की कुटिया से कुछ दूरी पर खड़ा करके गया था और सीता को बलात् दबोच कर उसे विमान में अपने बराबर में बिठा कर ले उड़ा था।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में हनुमान के लंका में उतरने (उत्पपात) का जैसा वर्णन (सर्ग 1, श्लोक 42-43) मिलता है वह बिल्कुल वैसा ही है जैसा वर्तमान में हैलीकाप्टर के हैलीपैड पर उतरते समय का होता है। वहाँ लिखा है—

उत्पपाताय वेगेन वेगवानविचारयन्।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः॥
समुत्पतति तस्मिंस्तु वेगात्ते नगरोहिणः।
संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः॥

अपनी बाधाओं की उपेक्षा न करके अत्यन्त वेग से कूद पड़े। उस समय वनवासिश्रेष्ठ हनुमान ने अपने को गरुड़ के समान समझा। वेगपूर्वक कूदते समय उनके वेगजनित वायुवेग से आस-पास के वृक्ष और उनकी शाखायें और लता-गुल्म उखड़ गये।

रावण और जटायु का युद्ध आकाश में हुआ था। दुर्जनतोषन्याय से यदि यह मान लिया जाय कि जटायु पक्षी था तो भी रावण तो निश्चित रूप से मनुष्य ही

था। तब रावण की तरह जटायु को भी अपने विमान पर सवार मनुष्य स्वीकार करने में क्या विसंगति है। वह भी एक भूतपूर्व राजा था।

संस्कृत में 'वी' पक्षी को कहते हैं। और 'मान' का अर्थ है—जैसा (सदृश)। इसलिए विमान का अर्थ हुआ पक्षी जैसा। लोकभाषा में विमान को चीलगाड़ी वोलते हैं—विमान के डैने भी पक्षी के पंख (पक्ष) जैसे ही होते हैं।

पंचतन्त्र की एक कथा में लिखा है कि धूर्त मनुष्य विष्णु का रूप बना कर गरुड़ की आकृति के वाहन पर सवार होकर आता था। गयाचिन्तामणि नामी ग्रन्थ में मयूर की आकृति के विमान का वर्णन है। भागवत में शाल्व राजा के विमान का वर्णन करते हुए लिखा है—

स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम्।
ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन्।
क्वचिद् भूमौ क्वचिद् व्योम्नि गिरिश्रृंगे जले क्वचित्॥

अर्थात् शाल्व का विमान भूमि, आकाश, समुद्र और पर्वत पर आसानी से चलता था। इतना ही नहीं, भरद्वाज ऋषिकृत अंशुबोधिनी के विमान अधिकरण में 'शक्त्युद्‌ममोधष्टौ' सूत्र पर वोधायन की वृत्ति में लिखा है—

शक्त्युद्‌मो भूतवाहो धूमयानशिखोद्‌गमः।
अंशुवाहस्तारामुखो मणिवाहो मरुत्सखः॥
इत्यष्टकाधिकरणे वर्गाण्युक्तानि शास्त्रतः॥

यहाँ बिजली से चलने वाले, अग्नि, जल से चलने वाले, वाष्प से चलने वाले, तेल से चलने वाले, सूर्य की किरणों से चलने वाले, चुम्बक से चलने वाले, सूर्य-कान्त-चन्द्रकांत मणियों से चलने वाले और केवल वायु से चलने वाले—आठ प्रकार के विमानों का उल्लेख हुआ है।

विमान प्रायः गरुड़ की आकृति के बनते थे, क्योंकि विष्णु नामक सम्राट् के वाहन की आकृति वैसी थी—'यद्यदाचरति श्रेष्ठः लोकस्तदनुवर्त्तते'। आज भी इण्डोनेशिया में विमान को गरुड़ कहा जाता है और 'राजवल्ली' 'चन्द्रवल्ली' जैसे नामों से पुकारा जाता है।

विमानों के बनाने वाले कारीगर इस देश में बौद्धकाल तक रहे।

रामचन्द्र जी से भेंट होने के बाद जटायु ने पंचवटी में रहते राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में अपनी पुत्रवधू के समान सीता की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। तदनन्तर हम जटायु को सीता का अपहरण करके भागते हुए रावण से सीता की रक्षा के निमित्त लड़ता हुआ और इसी प्रयास में प्राणों की आहुति देता पाते हैं। वहीं रावण को अपना परिचय देते हुए जटायु ने कहा था—

जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः।
षष्टिवर्षोत्तर शतं मम जातस्य रावण ॥
वृद्धोऽहं युवा धन्वी सशरः कवचीरथी।
तथाप्यादाय वैदेहीं कुशली न गमिष्यसि ॥
न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदहीं मम पश्यतः।
हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥ 50/4, 21, 22

हे रावण ! मैं इस समय 160 वर्ष का हूँ और तुम अभी जवान हो और कवच, बाण और रथ आदि साधनों से युक्त हो। तब भी तुम मेरे रहते बलपूर्वक सीता को नहीं ले जा सकते, जिस प्रकार तर्क एवं हेतुओं से सिद्ध वेद का कोई खण्डन नहीं कर सकता।

जटायु ने पूरी शक्ति से युद्ध किया परन्तु सीता को मुक्त न करा सके। "अभ्यधावत वैदही स्वबन्धुमिव दुःखिता" (51/4)—रक्तरंजित जटायु को पृथिवी पर गिरा देख कर दुःखी सीता सगे सम्बन्धी के समान जटायु की ओर दौड़ पड़ी। कुछ समय के बाद सीता की खोज करते हुए राम-लक्ष्मण जटायु के पास पहुँचे। जटायु ने उन्हें बताया—

यामोषधिमिव युष्मन्नन्वेषसि महावने।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥ 67/15-16

हे चिरंजीव ! इस वन में ओषधि के समान जिस सीता को तुम खोज रहे हो, उस जानकी को और मेरे प्राणों को रावण हर ले गया। शक्तिशाली रावण द्वारा हरी जाती हुई सीता को मैंने स्वयं देखा है।

यह सब जान कर राम ने जटायु को गले से लगा लिया और लक्ष्मण सहित फूट-फूट कर रोने लगे। प्राण निकलने से पूर्व जटायु ने यह भी बता दिया कि रावण जानकी को दक्षिण की ओर ले गया है। रावण विश्रवा का पुत्र है तथा प्रसिद्ध कुबेर का सगा छोटा भाई है। इससे अधिक वह नहीं बोल सका। और उसके प्राण निकल गये। उस समय राम के उद्‌गार—

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम्।
यथा विनाशे गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥
राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशः।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम्।
गृध्रराजं दिधक्षामि मत्कृते निधनं गतम् ॥

नामं पतगलोकस्य चितामारोपयाम्यहम् ।
इमं धक्ष्यामि सौमित्रे हतं रौद्रेण रक्षसा ।।
या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या मतिः ।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ।।
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् ।
गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज ।।
एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ।। 68/25-31

हे लक्ष्मण ! जानकी के हरण का मुझे इतना दुःख नहीं हुआ जितना आज इस तपस्वी जटायु की मृत्यु से हो रहा है । मेरी दृष्टि में जैसे पूजनीय, महा-यशस्वी पिता राजा दशरथ थे, उसी प्रकार आदरणीय जटायु हैं। हे लक्ष्मण ! काष्ठों का संचय करो । मैं अरणी से मथ कर प्राप्त अग्नि से तपस्वी जटायु की अन्त्येष्टि करूंगा जो मेरी खातिर मारा गया है । हे लक्ष्मण ! गृध्रराज जटायु के शव को मैं अपने हाथों से चिता पर रक्खूंगा । उस भयंकर राक्षस के द्वारा मारे गये इस महापुरुष को मैं अपने हाथ से जलाऊँगा । जो गति यज्ञानुष्ठान करने वालों की होती है, दीक्षित अग्निहोत्रियों की होती है, संग्राम से न लौटकर लड़ते-लड़ते मरने वालों की तथा भूमिदान करने वालों की होती है, मेरे द्वारा अन्त्येष्टि किये जाने तथा मेरे द्वारा प्रार्थना किए जाने पर तुम्हें वही गति प्राप्त हो । इस प्रकार कह कर रामचन्द्र जी ने अपने कुटुम्बी की तरह जटायु के शव को चिता पर रख अग्नि प्रज्वलित की ।

क्या यह सब किसी पक्षी (और वह भी गृद्ध जैसे घृणित प्राणी) के लिए कहा या किया जा सकता है ? क्या एक गृद्ध जैसा पक्षी 'हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव' जैसा महत्त्वपूर्ण वचन बोल सकता है ? क्या कोई मनुष्य अपनी पत्नी से अधिक एक गृद्ध के लिए शोकाकुल हो सकता है ? क्या कोई एक गृद्ध को अपने पिता के समान पूजनीय और आदरणीय मान सकता है ? और क्या कोई व्यक्ति अपने बाप-दादा और गृध्र में समानता दर्शाते हुए यह कहने के लिए तैयार होगा ?—

यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् ।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ।।

अपने पिता दशरथ और पितामह अज की भांति ही आपसे मिल कर मेरा चित्त प्रसन्न हो गया ।

जटायु प्रकरण के बाद आगे बढ़ने पर जब रामचन्द्र जी की भेंट सुग्रीव से हुई तब सुग्रीव ने उन्हें बताया—

ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा क्रूर कर्मणा।
क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम्॥
स्फुरन्ती रावणस्यांके पन्नगेन्द्रवधूर्यथा।
आत्मनापञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतटे स्थितम्॥
उत्तरीयंतया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च।
तान्यस्माभिगृ्हीतानि निहितानि च राघव॥कि० 6/9-11

भयंकर कर्म करने वाले राक्षस के द्वारा हरी जाती हुई सीता को मैंने देखा। विकृत स्वर में रोती हुई और 'हा राम, हा लक्ष्मण' चिल्लाती हुई रावण के समीप पन्नगेन्द्र वधू के समान शोभा को प्राप्त हो रही थी। इस पर्वत की चोटी पर पाँच वनवासियों के साथ मुझे देखकर उसने अपनी चादर तथा उसमें बँधे हुए आभूषणों को मेरे पास गिरा दिया। उन्हें उठाकर हमने अपने पास सँभालकर रख लिया।

सीता का अपहरण करने वाले का ठौर-ठिकाना न जानते हुए भी सुग्रीव ने कहा—

रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम्।
तथास्मि कर्त्ता न चिराद्यथा प्रीता भविष्यसि॥कि० 7/4

रक्षकों के सहित रावण को मारकर अपने लोगों के पुरुषार्थ का परिचय देकर मैं शीघ्र ही सीता को प्राप्त कर लूंगा।

बालि भी रावण को अच्छी तरह जानता था। राम द्वारा मारे जाने पर उसने कहा था—

सुग्रीव प्रियकामेन यत्कृतेऽस्मि हतस्त्वया।
मामेव यदि पूर्वं त्वमेतदर्थं मचोदयः॥
मैथिलीमहमेकान्हा तव चानीतवान् भवेः।
राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणम्॥
कण्ठे बद्ध्वा प्रदद्यां तेऽनिहितं रावणं रणे।
न्यस्तां सागरतोये वा पाताले वापि मैथिलीम्॥कि० 45/47

सुग्रीव की कामना सिद्ध करके अपने कार्य की सिद्धि करने के लिए आपने यदि मुझे मारा है, यदि अपने मन का यह भाव आप मुझे पहले बता देते तो मैं एक ही दिन में मिथिलेश कुमारी को लाकर दे देता। आपकी स्त्री का अपहरण करने वाले उस दुरात्मा रावण को जीते-जी गले से पकड़कर आपके सामने डाल देता, चाहे जानकी को उसने सागर के जल में या पाताल में कहीं भी छुपा कर रक्खा होता।

सीता की खोज में प्रवृत्त वानरों की कालान्तर में सम्पाति से भेंट हुई। सम्पाति जटायु का बड़ा भाई और गृध्रकूट का भूतपूर्व शासक था। सम्पाति ने बताया कि रावण यहाँ से सौ योजन के पश्चात् समुद्र के द्वीप में निर्मित लंका में रहता है। रावण के महल में बन्दीभूत, राक्षसियों के बीच सुरक्षित जनक की राजकुमारी सीता को तुम देख सकोगे।

सम्पाति ने सीता का अपहरण करने वाले का नाम-पता पूरी तरह बता दिया। पर उससे पूर्व जटायु, सुग्रीव और बालि भी अपहरण करने वाले का नाम बता चुके थे। सीता का अपहरण करने वाले रावण ने भी अपहरण करने से पूर्व अपना पूरा परिचय सीता को दे दिया था। जटायु ने राम को बताया था कि रावण सीता को दक्षिण की ओर ले गया है। रावण अपने समय में लोक-विश्रुत व्यक्ति था। उसके बल और वैभव से सब आतंकित थे। जटायु और सम्पाति दोनों सहोदर भाई थे और दोनों ही गृध्रकूट के भूतपूर्व राजा थे। यह कैसे हो सकता है कि दोनों में से एक तो रावण के विषय में सब कुछ जानता हो और दूसरा उससे सर्वथा अनभिज्ञ हो। बालि रावण का नाम-धाम सब जानता हो और उसी घर में रहने वाला सुग्रीव नाममात्र जानता हो। ऐसी अवस्था में वानरों का सीता का पता लगाने के लिए बड़ी संख्या में भेजा जाना और उनका कई महीनों तक जंगल की खाक छानते रहना विवेच्य है।

हनुमानादि बन्दर नहीं थे ?

वानर—वने भवं वानम्, राति (रा आदाने) गृह्णाति ददाति वा। वानं वन सम्बन्धिनं फलादिकं गृह्णाति ददाति वा—जो वन में उत्पन्न होने वाले फलादि खाता है वह वानर कहलाता है। वर्त्तमान में जंगलों व पहाड़ों में रहने और वहाँ पैदा होने वाले पदार्थों पर निर्वाह करने वाले 'गिरिजन' कहाते हैं। इसी प्रकार वनवासी और वानप्रस्थ वानर वर्ग में गिने जा सकते हैं। वानर शब्द से किसी योनि विशेष, जाति, प्रजाति अथवा उपजाति का बोध नहीं होता।

जिसके द्वारा जाति एवं जाति के चिह्नों को प्रकट किया जाता है, वह आकृति है। प्राणिदेह के अवयवों की नियत रचना जाति का चिह्न होती है। सुग्रीव, बालि आदि के जो चित्र देखने में आते हैं उनमें उनके पूंछ लगी दिखाई जाती है, परन्तु उनकी स्त्रियों के पूंछ नहीं होती। नर-मादा में इस प्रकार का भेद अन्य किसी वर्ग में देखने में नहीं आता। इसलिए पूंछ के कारण हनुमान आदि को बन्दर नहीं माना जा सकता।

हनुमान से रामचन्द्र जी की पहली बार भेंट ऋष्यमूक पर्वत पर हुई थी। दोनों में परस्पर बातचीत के बाद रामचन्द्र जी लक्ष्मण से बोले—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहुव्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥
संस्कारक्रमसंपन्नामद्रुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम्॥

कि० 3/28, 29, 32

ऋग्वेद के अध्ययन से अनभिज्ञ और यजुर्वेद का जिसको बोध नहीं है तथा जिसने सामवेद का अध्ययन नहीं किया है, वह व्यक्ति इस प्रकार परिष्कृत बातें नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अभ्यास किया है, क्योंकि इतने समय तक बोलने में इन्होंने किसी भी अशुद्ध शब्द का उच्चारण नहीं किया है। संस्कारसंपन्न, शास्त्रीय पद्धति से उच्चारण की हुई इनकी कल्याणी वाणी हृदय को हर्षित कर रही है।

वस्तुतः हनुमान अनेक भाषाविद् थे। वह अवसर के अनुकूल भाषा का व्यवहार करते थे, इसका संकेत हमें सुन्दर काण्ड में मिलता है। लंका में पहुंच

कर हनुमान ने सीता को अशोक वाटिका में राक्षसियों के बीच बैठे देखा। वृक्षों की शाखाओं के बीच छुपकर बैठे हनुमान सोचने लगे—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ।।
सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा ।
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासं गमिष्यति ।।
ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी ।
जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ।।

सुन्दर 30/18, 20

यदि द्विजाति (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) के समान परिमार्जित संस्कृत भाषा का प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर भय से संत्रस्त हो जाएगी। मेरे इस वनवासी रूप को देखकर तथा नागरिक संस्कृत को सुनकर पहले ही राक्षसों से डरी हुई यह सीता और भयभीत हो जाएगी। मुझको कामरूपी रावण समझ कर भयातुर विशालाक्षी सीता कोलाहल आरम्भ कर देगी। इसलिए—

अहं त्वतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः ।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ।। 17

मैं सामान्य नागरिक के समान परिमार्जित भाषा का प्रयोग करूँगा।

इससे प्रतीत होता है कि लंका की सामान्य भाषा संस्कृत थी, जबकि जन-साधारण संस्कृत से भिन्न, किन्तु तत्सम अथवा तद्भव, शब्दों का व्यवहार करते थे। कुछ टीकाकारों के अनुसार हनुमान ने अयोध्या के आस-पास की भाषा से काम लिया था।

बालिपुत्र अंगद के विषय में वाल्मीकि ने लिखा है—

बुद्धया ह्यष्टाङ्गयायुक्तं चतुर्बलसमन्वितम् ।
चतुर्दशगुणं मेने हनुमान् बालिनः सुतम् ।। कि॰ 54/2

हनुमान् बालिपुत्र अंगद को अष्टाङ्ग बुद्धि से संपन्न, चार प्रकार के बल से युक्त और राजनीति के चौदह गुणों से युक्त मानते थे।

अष्टांग बुद्धि—

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहापोहार्थं विज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ।।

सुनने की इच्छा, सुनना, सुनकर धारण करना, ऊहापोह करना, अर्थ या तात्पर्य को ठीक-ठीक समझना, विज्ञान व तत्त्वज्ञान—बुद्धि के ये आठ अंग हैं।

चतुर्बल—साम, दाम, भेद, दण्ड। शत्रु को वश में करने के लिए नीति-शास्त्र में चार उपाय बताए गए हैं, उन्हीं को यहाँ चार प्रकार का बल कहा

गया है। किन्हीं-किन्हीं के मत से बाहुबल, मनोबल, उपाय बल और बन्धुबल—ये चार बल हैं।

चतुर्दश गुण—

देशकालज्ञता दार्ढ्यं, सर्वक्लशसहिष्णुता,
सर्वविज्ञानता दाक्ष्यमूर्जः संवृत्तमन्त्रता।
अविसंवादिता शौर्यं भक्तिज्ञत्वं कृतज्ञता,
शरणागतवात्सल्यममर्षित्वमचापलम्॥

1. देशकाल का ज्ञान, 2. दृढ़ता, 3. कष्टसहिष्णुता, 4. सर्वविज्ञानता, 5. दक्षता, 6. उत्साह, 7. मन्त्रगुप्ति, 8. एकवाक्यता, 9. शूरता, 10. भक्ति-ज्ञान, 11. कृतज्ञता, 12. शरणागतवत्सलता, 13. अमर्षित्व=अधर्म के प्रति क्रोध और 14. अचपलता=गम्भीरता।

और बालि की पत्नी एवं अंगद की माता तारा को वाल्मीकि ने 'मन्त्रवित्' बताया है (कि० 16/12)। मरते समय बालि ने तारा की योग्यता का बखान करते हुए सुग्रीव को परामर्श दिया—

सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता॥
यदेषा साध्विति ब्रूयात् कार्यं तन्मुक्तसंशयम्।
न हि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते॥

कि० 23/13-14

सुषेण (जिनकी चिकित्सा से मृतप्राय लक्ष्मण जीवित हो गए थे—संजीवनी वाले वैद्य) की पुत्री यह तारा सूक्ष्म विषयों के निर्णय करने तथा नाना प्रकार के उत्पातों के चिह्नों को समझने में सर्वथा निपुण है। जिस कार्य को यह अच्छा बताए, उसे निःसंग होकर करना। तारा की किसी सम्मति का परिणाम अन्यथा नहीं होता।

बालि की अन्त्येष्टि के समय सुग्रीव ने आज्ञा दी—"और्ध्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलतः" (कि० 25/30)—मेरे ज्येष्ठ बन्धु आर्य का संस्कार राजकीय नियम के अनुसार शास्त्रानुकूल किया जाए।

तदनन्तर सुग्रीव के राजतिलक के समय सोलह सुन्दर 'कन्याएँ' अक्षत, अंगराज, गोरोचन, मधु, घृत आदि लेकर आईं और वेदी पर प्रज्वलित अग्नि में—"मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदोजनाः" (26/10) मन्त्रोच्चारणपूर्वक हविष्य के द्वारा मन्त्रविद् विद्वानों ने हवन किया।

इस सारे वर्णन और विवरण को बुद्धिपूर्वक पढ़ने के बाद कौन मान सकता है कि हनुमान् और तारा आदि मनुष्य न होकर पेड़ों पर उछल-कूद मचाने वाले बन्दर-बन्दरिया थे?

राम समय पर क्यों नहीं बोले ?

ननिहाल से लौटने पर जब भरत को राम के वनवास की घटना का पता चला तो वे अपने परिवार या अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ राम को अयोध्या लौटाने के लिए कृतसंकल्प चित्रकूट गये । ऋत्विज, वेदपाठी विद्वान्, नगर के पंच, आँखों में आँसू भरकर रोती हुई माताएँ—इन सभी ने दृढ़तापूर्वक बोलने वाले भरत की भरपूर प्रशंसा की और रामचन्द्र से अयोध्या लौटने का आग्रह किया। जब राम ने देखा कि भरत किसी प्रकार भी उन्हें साथ लिये बिना अयोध्या लौटने को तैयार नहीं, तब उन्होंने भरत से कहा—उसे स्मरण कराया—

> पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन् ।
> मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम् ।।अयो० 107/3

भैया ! आज से बहुत पहले की बात है—पिताजी का जब तुम्हारी माता के साथ विवाह हुआ था, तभी पिताजी ने तुम्हारे नाना जी से यह प्रतिज्ञा की थी कि कैकेयी से जो पुत्र उत्पन्न होगा उनके बाद वही राज्य का अधिकारी होगा। विवाह के शुल्क के रूप में पिताजी ने यह स्वीकार कर लिया था (मनुस्मृति के अनुसार यह 'आर्षविवाह' की कोटि में आता है) ।

प्रकारान्तर से यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि यदि राम को इस बात का पता था तो यह कैसे हो सकता है कि मन्थरा को और स्वयं कैकेयी को इसकी जानकारी न हो ? तब राम के राज्याभिषेक की भनक पड़ते ही कैकेयी ने दशरथ को इसका स्मरण कराते हुए अपने पुत्र भरत के अधिकार के प्रति आग्रह क्यों नहीं किया ? और मन्थरा ने भी कैकेयी को भड़काने के लिए दशरथ को विवाह के अवसर पर दिये गये वचन को भंग करने जैसे अपराध का दोषी ठहरा कर वह सब कुछ क्यों नहीं किया जो युद्ध काल में पुरस्कारस्वरूप दिये गये वरदान के कारण किया ?

राम के राज्याभिषेक के प्रसंग में रामायण में लिखा है—

> एषाह्यस्य परा प्रीतिर्हृदि संपरिवर्तते ।
> कदा नाम सुतं द्रक्ष्याम्यभिषिक्तमहं प्रियम् ।।2/37
> तं समीक्ष्य महाराजो युक्तं समुदितैः शुभैः ।
> निश्चित्य सचिवैः सार्धं यौवराज्यममन्यत ।।42

इन (महाराज दशरथ) के हृदय में यह अभिलाषा निरन्तर रहती थी कि कब मैं प्रिय पुत्र राम को अभिषिक्त (राजा बना हुआ) देखूंगा। राम को लोकोत्तर गुणों से (लोकोत्तरैः गुणैः) युक्त जानकर दशरथ ने समुदित शुभ गुणों वाले मन्त्रियों के साथ परामर्श करके राम को युवराज बनाने का निश्चय किया।

आत्मनश्च प्रजानां च श्रेयसे च प्रियेण च।
प्राप्तकाले स धर्मात्मा भक्त्या त्वरितवान् नृपः ॥45
नानानगरवास्तव्यान् पृथग्जानपदानपि।
समानिनाय मेदिन्याः प्रधानान् पृथिवीपतिः ॥46
न तु केकयराजानं जनकं व नराधिपः।
त्वरया चानयामास पश्चात्तौश्रोष्यतः ॥48

धर्मात्मा राजा दशरथ ने अभिषेक का समय आने पर अपने और प्रजा के कल्याण के लिए अभिषेकार्थ शीघ्रता की। दशरथ ने नाना नगरों में रहने वाले तथा पृथिवी के अन्य देशों के प्रधान राजाओं को बुलाया। शीघ्रता के कारण केकयराज तथा राजा जनक को नहीं बुलाया। वे दोनों इस समाचार को सुन लेंगे (ऐसा विचार किया)।

ततः परिषदं सर्वमामन्त्र्य वसुधाधिपः।
हितमुद्धर्षणं चैवमुवाच प्रथितं वचः ॥1
राजप्रभावजुष्टां हि दुर्वहामजितेन्द्रियैः।
परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्य गुर्वीं धर्मधुरं वहन् ॥9
सोऽहं विश्राममिच्छामि रामं कृत्वा प्रजाहिते।
संनिकृष्टानिमान् सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान् ॥10
अनुजातो हि मां सर्वैर्गुणैर्ज्येष्ठो ममात्मजः।
पुरंदरसमोवीर्ये रामः परपुरंजयः ॥11
तं चन्द्रमिव पुष्येण युक्तं धर्मभृतां वरम्।
यौवराज्ये नियोक्तास्मि प्रातः पुरुषपुंगवम् ॥12
यदीदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यतां कथं वा करवाण्यहम् ॥15
यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद्विचिन्त्यताम्।
अन्या मध्यस्थचिन्ता हि विमर्दाभ्यधिकोदया ॥अयोध्या० 2/16

तत्पश्चात् राजा ने सारी परिषद को बुलाकर हितकारी, हर्षजनक और प्रथित (सब लोगों को सुनने योग्य) वचन कहा—"राजाओं के प्रभाव (शौर्य आदि) से सेवन करने योग्य और अजितेन्द्रिय पुरुषों से धारण न करने योग्य

संसार की धुरी को ढोता हुआ मैं थक गया हूँ । सो मैं विश्राम चाहता हूँ । मेरा ज्येष्ठ पुत्र गुणों में मेरे जैसा ही है । शत्रुओं को जीतने वाला राम पराक्रम में इन्द्र के समान है । पुष्य नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा के समान सब कार्मसाधक, धार्मिकों में उत्तम, पुरुषश्रेष्ठ इस राम को कल प्रातः युवराज बनाऊँगा । यदि यह विचार मेरे अनुरूप और उचित हो तो आप अनुमति देवें, अथवा मैं कैसे क्या करूँ, यह बतावें । यद्यपि यह मेरी प्रीति का विषय है, फिर भी जो अन्य (सुझाव) हितकारी हो उस पर आप लोग विचार करें । इस प्रकार—

सत्यधर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाम सर्वशः ।
ब्राह्मणा जनमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ।।19
समेत्य मन्त्रयित्वा तु समतां गतबुद्धयः ।
ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ।।20
अनेकवर्षवयसो वृद्धस्त्वमसि पार्थिव ।
स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिवम् ।।21

उस धर्म और अर्थ के विद्वान् (राजा दशरथ) के भाव को भली प्रकार जान कर (वसिष्ठ आदि) ब्राह्मणों और राजाओं ने नगर और राज्य के लोगों के साथ मिलकर विचार करके समान बुद्धि को प्राप्त हो (सर्वानुमति से) निश्चय करके वृद्ध राजा दशरथ से कहा—हे राजन् ! आप अनेक वर्षों से बृद्ध हैं, इसलिए राम को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दें ।

तत्पश्चात् दशरथ ने सूत के द्वारा राम को अपने पास बुलवा भेजा । राम के महल में आने पर दशरथ ने उन्हें आलिंगन करके आसन पर बैठने का संकेत किया । राम के आसन ग्रहण करने पर दशरथ बोले—"तुम्हारे अभिषेक के अतिरिक्त अब मेरे लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहा । अतः अभिषेक के विषय में तुमसे जो मैं कहूँ, उसे सुनो—

अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वाभिगच्छन्ति न नराधिपम् ।
अतस्त्वाम् युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक ।।4/16
तद्यावदेव मे चेतो न विमुह्यति राघव ।
तावदेवाभिषिञ्चस्व चला हि प्राणिनां मतिः ।।4/20
तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्त्वरयति माम् ।
श्वस्त्वाहमभिषेक्ष्यामि यौवराज्ये परन्तप ।।22
सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां रक्षन्त्वद्य समन्ततः ।
भवन्ति बहुविघ्नानि कार्यण्येवं विधानि हि ।।24
विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः ।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ।।25

कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थितः।
ज्येष्ठानुवर्त्ती धर्मात्मा सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।।26
किन्तु चित्तं मनुष्याणामनित्यमिति मे मतिः।
सतां च धर्मनित्यानां कृतशोभि च राघव ।।26

इस समय समस्त प्रजा तुम्हें राजा बनाना चाहती है। अतः हे प्रिय पुत्र आज मैं तुम्हें युवराज पद पर अभिषिक्त करूँगा। जब तक मेरा चित्त विमूढ़ (किंकर्त्तव्यविमूढ़) अथवा विवेकशून्य या विचलित नहीं होता, तब तक अभिषेक करा लो। क्योंकि मनुष्यों की मति चंचल होती है (कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें अभिषिक्त करने का मेरा विचार ही बदल जाय)। पुष्य नक्षत्र में अभिषिक्त करो (इस प्रकार) मेरा मन शीघ्रता करा रहा है। अतः मैं कल ही तुम्हें अभिषिक्त कर दूंगा। तुम्हारे मित्र सावधान होकर चारों ओर से तुम्हारी रक्षा करें; क्योंकि इस प्रकार के कामों में अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित हो जाते हैं। जब तक भरत इस नगर से दूर विदेश में है, तभी तक तुम्हारे अभिषेक का उपयुक्त समय है, ऐसा मेरा मत है। यह ठीक है कि तुम्हारा भाई भरत सत्पुरुषों के मार्ग पर स्थित, बड़े भाई का अनुसरण करने वाला, धर्मात्मा, दयालु और जितेन्द्रिय है। तथापि मनुष्यों का चित्त अस्थिर होता है। यह सब सुनकर पिता से आज्ञा पाकर राम बाहर चले गये।

यहां एक साथ कई प्रश्न उठते हैं—

1. राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। जब उन्हें कैकेयी के साथ विवाह के समय पिता दशरथ द्वारा दिये गये वचन का, मेरे बाद कैकेयी से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा, पता था तो दशरथ द्वारा युवराज बनाये जाते समय राम ने दशरथ को इस वचन का स्मरण कराते हुए युवराज बनने से इन्कार क्यों नहीं किया ?

2. जितने समय में देश-देशान्तर के राजा-महाराजा (मेदिन्याःप्रधानान्) आमन्त्रित होकर अयोध्या पहुँच सकते थे, उतने में अपने निकट सम्बन्धी जनक और कैकेयी के पिता के पहुँचने में क्या बाधा थी ? क्या इसका कारण यही नहीं था कि उन दोनों के आ जाने पर कैकेयी को दिये वचन के कारण भरत को युवराज बनाने की बात उठ सकती थी और इस प्रकार राम के राज्याभिषेक में बाधा पड़ सकती थी ? दशरथ की हार्दिक इच्छा थी कि राम युवराज बनें। परम्परा के अनुसार भी ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राम दशरथ के उत्तराधिकारी और इस कारण गद्दी के अधिकारी ठहरते थे। उधर कैकेयी का दशरथ के साथ विवाह इस शर्त पर हुआ था कि उससे उत्पन्न पुत्र ही राजा बनेगा। ऐसे अवसर पर कैकेयी के पिता भी कैसे मूक रह सकते थे ? यदि जनक राम का पक्ष लेते तो कैकयराज भरत का। दोनों में संघर्ष अनिवार्य था। इस स्थिति को टालने के लिए

ही दशरथ ने यह उचित समझा होगा कि दोनों में से किसी को भी न बुलाया जाय। दशरथ के राम को दुबारा एकान्त में बुलाकर बातचीत करने और सावधान रहने को कहने में भी यही रहस्य रहा होगा।

3. क्या दशरथ के यह कहने से कि 'जब तक भरत अयोध्या से बाहर विदेश में हैं, तब तक राम का अभिषेक हो जाना चाहिए' उक्त बात की पुष्टि नहीं होती ?

4. मैथिलीशरण गुप्त के साकेत की कैकेयी के मन में बार-बार यह बात उठती थी और डंक मारती थी—'भरत से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उसे जो गेह।' राम में पूरी तरह अनुरक्त कैकेयी के आक्रोश एवं विद्रोह का कारण इसी में खोजना होगा।

5. भरत के सद्‌गुणों की निरतिशय प्रशंसा (रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्) करते हुए भी उसके प्रति अविश्वास व्यक्त करना दशरथ के लिए कहाँ तक उचित था ?

6. राज्याभिषेक जैसे हर्षोल्लास के अवसर पर भरत की उपस्थिति के लिए राम ने आग्रह क्यों नहीं किया ?

7. 'तुम्हारे मित्र सावधान होकर चारों ओर से रक्षा करें' राम जैसे लोक-प्रिय और अलौकिक व्यक्तित्व के धनी युवराज के लिए इतनी कड़ी सुरक्षा व्यवस्था क्या रामायणकालीन शान्ति और व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाती ?

8. इस सारे घटनाचक्र में राम का सर्वथा मौन रहना भी समझ में नहीं आता।

यहाँ राम की पृष्ठभूमि पर विचार करना उपयोगी होगा। राम का जिस रघुकुल में जन्म हुआ था, उसके विषय में प्रसिद्ध था—

त्यागाय संभृतार्थानाम्। (रघु० 1/7) दान के लिए संग्रह करते थे।

वार्धक्ये मुनिवृत्तीनाम्। बुढ़ापे में मुनियों की तरह जंगल में रहते थे।

आदानं हि विसर्गाय सतां बारिमुचामिव। बादलों की तरह सज्जनों का लेना लौटाने के लिए होता है।

स्वयं राम के लिए कहा गया है—

> आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
> न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोप्याकारविभ्रमः।।महानाटक 3/25

ऐसे राम के विषय में यह सोचना कि राम स्वयं राज्याभिषेक के लिए उत्सुक थे, उचित प्रतीत नहीं होता। राम को राज्य का लोभ होता तो वे भरत के दल-बल सहित अनुनय-विनय करने पर लौट भी सकते थे। पर वे नहीं लौटे। तब राम के मौन का एक ही कारण प्रतीत होता है—'आज्ञा गुरूणां

ह्यविचारणीया' गुरुजनों की आज्ञा का बिना सोचे-समझे पालन करना आवश्यक है। पिता का राम से और राम का पिता से लगाव होना भी इसमें कारण हो सकता है। राम ने यह भी सोचा होगा कि पिताजी जो कुछ कर रहे हैं, वह ठीक ही होगा। उसमें मेरा हस्तक्षेप उचित नहीं होगा। अन्यथा "पुरा भ्रातः···शुल्क-मनुत्तमम्" (अयो० 107/3) इस श्लोक को प्रक्षिप्त माने बिना समाधान संभव नहीं। इस एक श्लोक को प्रक्षिप्त मान लेने पर भी भरत की अनुपस्थिति में राम का राज्याभिषेक होना और उस अवसर पर सीता और कैकेयी के पिताओं का आमन्त्रित न किया जाना समाधेय रह जाते हैं। इसलिए इस विषय में और अधिक विचार अपेक्षित है।

दशरथ के शासन में कौशल्या की स्थिति

राम के वनवास का समाचार सुनकर कौशल्या वन में कुल्हाड़े से काटी गई तालवृक्ष की शाखा या आकाश से गिरी तारा के समान नीचे गिर पड़ी। तब चेतनाशून्य माता को राम ने उठाया। कौशल्या ने राजपरिवार में अपनी स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया—

यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव।
न स्म दुःखमतो भूय. पश्येयमहमप्रजाः॥
एकमेव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः।
अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते॥
न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पति पौरुषे।
अपि पुत्रे तु पश्येयमिति रामास्थितं मया॥
सा बहून्यमनोज्ञानि हृदयच्छिदाम्।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां वरा सती॥
अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति।
मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः॥
त्वयि संनिहितेऽप्येवमहमासं निराकृता।
किं पुन प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव मे॥
अत्यन्तं निगृहीतास्मि भर्त्तुर्नित्यमसम्मता।
परिवारेण कैकेय्याः समा वाप्यथवावरा॥
यो हि मां सेवते कश्चिदथवाप्यनुवर्तते।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते॥
नित्यक्रोधतयाः कथं तु खरवादि तत्।
कैकेय्या वदनं द्रष्टुं पुत्र शक्ष्यामि दुर्गता॥
तदक्षयमहं दुःखं नोत्सहे सहितुं चिरम्।
विप्रकारं सपत्नीनामेवं जीर्णापि राघव॥
अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ!
अनुव्रजिष्यामि वनं त्वमैव गौः सुदुर्बला वत्समिवानुकाङ्क्षया॥
अयोध्या०सर्ग 20/36-44, 46, 54

हे पुत्र! राघव! यदि तू मेरे (इस वियोगजन्य) शोक के लिए पैदा न हुआ

होता तो मैं पुत्रहीन होकर उस (वन्ध्या-दुःख) से अधिक (इस वियोगजन्य) दुःख को नहीं देखती। वन्ध्या को केवल एक ही मानसिक दुःख होता है कि मैं निस्सन्तान हूँ। उसको कोई अन्य दुःख नहीं होता। पति के पौरुष से प्राप्त कल्याण और सुख को मैंने नहीं देखा। राम! मैंने सोचा था कि तेरे युवराज होने पर मुझे सुख मिलेगा। पर अब मुझे अपने से छोटी सपत्नियों की हृदय को छेदनेवाली बहुत-सी अरुचिकर बातें सुननी पड़ेंगी। सपत्नियों के तानों के कारण जैसा यह अनन्त शोक मुझे प्राप्त हुआ है, किसी स्त्री के लिए इससे बढ़कर और कौन-सा दुःख होगा? हे पुत्र! तुम्हारे मेरे पास रहते भी जब मैं सदा तिरस्कृत रहती थी, तब तुम्हारे चले जाने पर मेरी क्या दशा होगी? तब तो निश्चय ही मेरी मृत्यु होगी। पति से सम्मान न पाने के कारण मैं कैकेयी की दासियों के बराबर या उनसे भी छोटी समझी जाती रही हूँ। जो मेरे सेवक हैं वे भी कैकेयी के पुत्र भरत को देख कर मुझसे सीधे मुँह नहीं बोलते। हे पुत्र! दुर्दशा को प्राप्त हुई मैं क्रोध के कारण सदा कठोर बोलने वाली कैकेयी का मुँह कैसे देख सकूँगी? मैं अब इस अक्षय दुःख और सपत्नियों से मिलने वाले दुःख को नहीं सह सकूँगी। तेरे बिना मेरे इस जीने से क्या? यह तो व्यर्थ है। इसलिए अपने बछड़े के पीछे-पीछे चलने वाली गाय के समान मैं भी तेरे साथ वन को चलूँगी।

दशरथ की स्वीकारोक्ति—विलाप करते हुए दशरथ ने कौशल्या के प्रति किए गए अपने अनुचित व्यवहार को स्वीकार किया और कैकैयी से कहा—

यदा यदा च कौसल्या दासीवच्च सखीव च, भार्यावद भगिनीवच्च मातृवच्चो पतिष्ठति। सततं प्रियकामा मे प्रियपुत्रा प्रियंवदा, न मया सत्कृता देवी सत्कार्हा कृते तव ॥ अयोध्या॰ 12/68-70

जब कौशल्या, जो सेवा करने में दासी के समान, रहस्य में सखी के समान, धर्मकृत्यों में स्त्री के समान, हितैषियों में बहन के समान, आग्रहपूर्वक भोजन कराने में माँ के समान, सदा कामना करने वाली (भला चाहने वाली) और सभी पुत्रों से स्नेह करने वाली, समय-समय पर उपस्थित होती रही, तब-तब सत्कार के योग्य होते हुए भी मैंने तेरे कारण उसका समुचित सत्कार नहीं किया—यह सोचकर कि कहीं तू यह न समझ बैठे कि मैं तुझसे प्यार नहीं करता या कौशल्या की अपेक्षा कम करता हूँ।

वन के लिए प्रस्थान करते हुए यदि राम को कोई चिन्ता थी तो वह माता कौशल्या के भविष्य को लेकर। इसलिए चलते हुए उन्होंने अपने पिता से अनुरोध किया—

इयं धार्मिक/कौसल्या मम माता यशस्विनी।
वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देवगर्हते।

मया विहीनां वरद अपन्नां शोकसागरम्।
अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः सम्मन्तुमर्हसि ॥
पुत्रशोकं यथा नर्च्छेत् त्वया पूज्येन पूजिता।
मां हि संचिन्तयन्ती सा त्वपि जीवेत् तपस्विनी ॥ 38/14-16

धर्मात्मन् ! यह मेरी यशस्विनी माता कौशल्या अब वृद्ध हो चली हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त उदार और उच्च है। देव ! इन्होंने कभी आपकी निन्दा नहीं की। इन्होंने पहले कभी ऐसा भारी संकट भी नहीं देखा होगा। ये मेरे न रहने के शोक के सागर में डूब जायेंगी। अतः आप सदा इनका सम्मान करते रहें। आप सदा ऐसा प्रयत्न करते रहें जिससे ये पुत्रशोक अनुभव न करें और मेरा चिन्तन करती हुई भी मेरी तपस्विनी माता आपके आश्रय में ही जीवन धारण करें।

इमां महेन्द्रोपम जातगर्धिनीं, तथा विधातुं जननीं ममार्हसि।
यथा वनस्थे मयि शोककर्शिता, न जीवितं न्यस्य यमक्षयं व्रजेत् ॥ 38/17

इन्द्र के समान तेजस्वी महाराज ! ये सदा अपने बिछुड़े हुए बेटे को देखने के लिए उत्सुक रहेंगी। कहीं ऐसा न हो, मेरे वन में रहते ये शोक से कातर हो अपने प्राणों को त्याग कर यमलोक चली जाएँ। अतः आप मेरी माता को सदा ऐसी ही परिस्थिति में रक्खें जिससे ऐसा न होने पाए।

राम पिता की आज्ञा से वन नहीं गए

अन्य अनेक विशिष्ट गुणों के अतिरिक्त राम का चक्रवर्ती राज्य का परित्याग करके चौदह वर्ष के लिए वनवास स्वीकार करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। निस्संदेह यह बहुत बड़ी बात थी। परन्तु यह कहना कि राम ने ऐसा पिता अथवा माता-पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए किया, नितान्त मिथ्या है। सत्य तो यह है कि राम ने ऐसा पिता दशरथ की आज्ञा के विपरीत किया था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

कोपभवन में पड़ी कैकेयी ने काममोहित होकर वर देने के लिए उद्यत हुए दशरथ से कहा—हे देव! उस समय (देवासुर संग्राम के अवसर पर) आपने दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी।

तौ तावदहमद्यैव वक्ष्यामि श्रणु मे वचः।
अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः॥
अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम्।
यो द्वितीयो वरो देव दत्तः प्रीतेन मे त्वया॥
तदा देवासुरे युद्धे तस्य कालोऽयमागतः।
नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः॥
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः।
भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम्॥

अयोध्या० 11/24-27

उन दोनों वरों को मैं अभी बताऊँगी। आप मेरी बात सुनिए—यह जो श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी की गई है, इसी अभिषेक सामग्री द्वारा मेरे पुत्र भरत का अभिषेक किया जाए। आपने जो दूसरा वर दिया था, उसे प्राप्त करने का समय भी यह अभी आया है। धीर स्वभाव वाले श्रीराम तपस्वी के वेश में वल्कल तथा मृगचर्म धारण करके चौदह वर्ष तक दण्डकारण्य में जाकर रहें। भरत को आज निष्कण्टक राज्य प्राप्त हो जाए।

कैकेयी से बहुत कुछ कहने-सुनने के पश्चात् दशरथ बोले—

नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रतिभाषितुम्।
स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वक्ष्यति॥
यदि मे राघवः कुर्यात् वनं गच्छेति भाषितः।
प्रतिकूलं प्रियं मे स्यान्न तु वत्सः करिष्यति॥ 12/85/86

अपने पुत्र राम से यदि मैं वन जाने को कह दूँ तो वह तुरन्त 'बहुत अच्छा' कह कर चला जाएगा। प्रत्युत्तर में वह दूसरी बात कह ही नहीं सकता। मेरे 'वन जा' कहने पर यदि राम प्रतिकूल करे (अर्थात् मेरी बात न माने) तो उसका ऐसा करना मेरे लिए प्रिय होगा। परन्तु मेरा बेटा ऐसा करेगा नहीं।

स्पष्ट है कि दशरथ नहीं चाहते थे कि राम वन में जाएँ। इसके विपरीत वह हृदय से चाहते थे कि राम उनकी आज्ञा का (यदि वह दें) उल्लंघन करें। अन्त में उन्होंने कहा—

धर्म बन्धेन बद्धोऽस्मि नष्टा च मम चेतना।
ज्येष्ठं पुत्रं प्रियं रामं द्रष्टुमिच्छामि धार्मिकम् ॥ 14/24

हे देवि ! मैं धर्मबन्धन (प्रतिज्ञापाश) में बँधा हुआ हूँ। इस समय मैं अपने धर्मपरायण परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र राम को देखना चाहता हूँ।

राम को बुलाया गया तो राम कैकेयी के भवन में आए। वहाँ—

रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम् ॥
तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा रूपं भयावहम्।
रामोऽपि भयमापन्नः पदं स्पृष्ट्वेव पन्नगम् ॥ 18/3, 4

निकट पहुँचने पर उन्होंने देखा कि दीन दशा में पड़े हुए राजा दशरथ एक बार 'राम' ऐसा कह कर चुप हो गए (इससे आगे उनसे बोला नहीं गया)। उनके नेत्रों में आँसू भर आए, अतः वे श्रीराम की ओर न तो देख सके और न उनसे कुछ कह सके। राजा के उस अभूतपूर्व भयंकर रूप को देखकर श्रीराम भी ऐसे भयभीत हुए मानो उनका पैर किसी साँप पर पड़ गया हो।

अप्रसन्नाः किं नु सदा मां प्रति वत्सलः।
विवर्णवदनो दीनो न हि मामभिभाषते ॥ 18/12

मुझे सदा प्यार करनेवाले वे (दशरथ) आज दुःखित मन, उतरे चेहरे वाले तथा दीन-हीन से होकर मुझसे बोलते क्यों नहीं ? इस प्रकार अनेक प्रश्न करके राम ने दशरथ की दशा का कारण जानना चाहा। श्रीराम के इस प्रकार पूछने पर कैकेयी बोली—

न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किंचन।
किंचिन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्नाभिभाषते ॥
एष मह्यं वरं दत्वा पुरा मामभिपूज्य च।
स पश्चात्तप्यते राजा यथान्यः प्राकृतस्तया ॥

यदि तद्वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाशुभम् ।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम् ।।
यदि त्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते ।
ततोऽहमभिधास्यामि न ह्येष त्वयि वक्ष्यति ।।
18/20, 22, 25, 26

राम ! राजा न तो कुपित हैं और न ही इनको कोई विकार व्याधि है। इनके मन में कोई ऐसी बात है जिसे वह तुम्हारे डर से कह नहीं पा रहे हैं। बात यह है कि पहले तो इन्होंने मेरा सत्कार करते हुए मुँहमाँगा वरदान दे दिया और अब गँवारों की तरह उसके लिए पश्चात्ताप कर रहे हैं। राजा शुभ या अशुभ जो कुछ कहना चाहते हैं, यदि तुम सर्वथा उसका पालन करो तो फिर मैं सारी बात तुमसे कह दूँगी। यदि राजा की कही हुई बात तुम्हारे कानों में पड़ कर ही नष्ट न हो जाए—यदि तुम पूरी तरह उसका पालन कर सको तो मैं सब कुछ खोल कर बता दूँगी। **वे स्वयं तुमसे कुछ नहीं कहेंगे**। इस पर रामचन्द्र जी ने कहा—

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः ।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ।।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयमपि चार्णवे ।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ।।
तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ।। 18/28-30

देवि ! यह बात आपको मुझसे इस प्रकार नहीं कहनी चाहिए। क्योंकि मैं महाराज के आदेश से आग में भी कूद सकता हूँ तथा अपने गुरुजनों के द्वारा आदिष्ट होने पर तीक्ष्ण विष भी खा सकता हूँ और समुद्र में भी डूब सकता हूँ। इसलिए हे देवि ! महाराज दशरथ को जो अभीष्ट है, उसे कहिए। मैं उसका पालन करूँगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करके उसके विपरीत दूसरी बात नहीं बोलता। इस पर कैकेयी ने देवासुर संग्राम से लेकर राम के वनवास और भरत के राज्याभिषेक की माँग तक की सारी कहानी सुना दी। उत्तर में राम ने कहा—

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः ।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनु पालयन् ।। 19/2

ठीक है, ऐसा ही होगा। मैं महाराजा की आज्ञा का पालन करता हुआ जटा-चीरधारी बन कर वनवास के लिए चला जाऊँगा।

दशरथ ने राम से कुछ नहीं कहा। जो कुछ कहा, कैकेयी ने ही कहा। इससे पहले दशरथ कैकेयी से कह चुके थे कि (यदि मैं आदेश दूं तब भी) मुझे प्रसन्नता इस बात से होगी कि राम मेरे आदेश को न माने। कैकेयी ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा—

व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते।
नैतत्किंचिन्नरश्रेष्ठः मन्युरेषोऽपनीयताम्॥ 19/15
यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरन्।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा॥ 16

हे राम! लज्जा के कारण जो महाराज स्वयं तुमसे कुछ नहीं कह रहे हैं, यह कुछ नहीं, इस चिन्ता को तुम अपने मन से निकाल दो। हे राम! जब तक तुम जल्दी से इस नगर से वन को नहीं चले जाते, तब तक तुम्हारे पिता न स्नान करेंगे और न भोजन करेंगे।

इससे भी विस्पष्ट है कि स्वयं दशरथ ने राम को वन जाने का आदेश नहीं दिया। कैकेयी की इस धृष्टता को देख-सुनकर—

धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः।
मूर्च्छितो न्यपतत्तस्मिन् पर्यंके हेमभूषिते॥ 17

'तुझे धिक्कार! शोक' यह कहते हुए निःश्वास लेकर शोकाभिभूत राजा मूर्च्छित होकर पलंग पर गिर पड़े। तब राम ने स्वयं ही कहा—

अनुक्तोऽप्यत्र भवताभवत्या वचनादहम्।
वनेवत्स्यामिविजने वर्षाणीह चतुर्दश॥ 23

हे देवि! पिताजी के न कहने पर भी आपके आदेश से मैं चौदह वर्ष निर्जन वन में वास करूँगा।

पहले कैकयी ने कहा कि 'लज्जा के कारण महाराज स्वयं तुमसे कुछ नहीं कह रहे हैं' और अब 'स्वयं राम भी कह रहे हैं' कि 'पिताजी ने नहीं कहा है।' इतना ही नहीं, यहाँ राम ने कैकेयी से भी कह दिया कि मैं 'आपके आदेश से ही वन में वास करूँगा।' तब भी दशरथ ने कुछ नहीं कहा, क्योंकि—

स रामस्य वचः श्रुत्वा भृशं दुःखहतः पिता।
शोकादशक्नुवन् वक्तुं प्ररुरोद महास्वनम्॥ 27

अत्यधिक दुःख से आहत पिता दशरथ राम की बात सुनकर शोक के कारण बोल न सके, उच्च स्वर से (फूट-फूट कर) रो पड़े।

तत्पश्चात् राम माता कौशल्या की आज्ञा लेने उनके महल में गये।

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोतिस्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला॥ 15
सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम्।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा॥ 20

उस समय नित्य व्रतपरायण, रेशमी वस्त्र धारण की हुई कौशल्या मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्निहोत्र कर रही थीं। सदा माता को प्रसन्न करने वाले पुत्र को चिरकाल के बाद आया देखकर माता कौशल्या प्रसन्न होकर उसकी ओर इस प्रकार दौड़ीं जिस प्रकार घोड़ी अपने बच्चे को देखकर उसकी ओर दौड़ती है।

जब कौशल्या ने स्नेहपूर्वक राम को भोजन करने को कहा तो राम ने माता द्वारा दिए गए आसन का स्पर्श करके कहा—

गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे।
विष्टरासनयोग्योहि कालोऽयं मामुपस्थितः॥ 20/28
चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्॥ 29
भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति।
मां पुनर्दण्डकारण्ये निवासयति तापसम्॥ 30
स षट् चाष्टौ च वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
आसेवमानो वन्यानि फलमूलैश्चवर्तयन्॥ 31

मैं दण्डकारण्य जा रहा हूँ, इसलिए अब इस आसन से मेरा क्या प्रयोजन ? अब तो मेरे लिए तपस्वियों के समान कुशासन योग्य काल आ उपस्थित हुआ है। मैं राजभोग्योचित पदार्थों को छोड़कर मुनियों के समान मधु, कन्द, मूल एवं फलों से निर्वाह करता हुआ 14 वर्ष तक निर्जन वन में वास करूँगा। महाराज दशरथ भरत को युवराज पद दे रहे हैं और मुझे तापस बनाकर दण्डकारण्य भेज रहे हैं। सो मैं वल्कलों को धारण करता हुआ, फल और मूलों से निर्वाह करता हुआ 14 वर्ष तक वन में वास करूँगा। यह सुनकर—

सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता॥ 32
तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव।
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम्॥ 33
उपावृत्योत्थितां दीनां वडवामिव वाहिताम्।
पांसुकुण्ठितसर्वाङ्गीं विममर्श च पाणिना॥ 34

देवी कौशल्या वन में कुल्हाड़े से काटी गई साल वृक्ष की शाखा अथवा

आकाश से गिरी तारा के समान एकदम नीचे गिर पड़ीं। कदली स्तम्भ के समान गिरी हुई चेतना शून्य माता को राम ने उठाया। और भारवाहन के बाद थक कर लोट-पोट होकर उठी हुई घोड़ी के समान धूलि से लथपथ अंगों वाली माता को अपने हाथों से साफ किया। तब लक्ष्मण के सुनते हुए पास में बैठे राम से माता ने कहा—

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे।
अपि पुत्रे तु पश्येयमिति रामास्थितं मया॥ 38
त्वयि संनिहितेऽप्येवमहमासं निराकृता।
किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव च॥ 41

पति के पौरुष से होने वाले सुख और कल्याण को मैंने कभी प्राप्त नहीं किया। राम! मैंने सोचा था कि पुत्र के राज्य में सुख प्राप्त करूँगी। पुत्र! जब तुम्हारे पास रहने पर भी मैं तिरस्कृत रहती थी तो तुम्हारे चले जाने पर मेरी क्या दशा होगी। तब तो निश्चय ही मेरी मृत्यु होगी। इसलिए—

अनुव्रजिष्यामि वनं त्वमैव गौः सुदुर्बलावत्समिवानुकांक्षया॥ 54

अपने बच्चे के पीछे जाने वाली दुर्बल गाय के समान मैं भी तेरे साथ ही वन को जाऊँगी। इस पर लक्ष्मण बोला—

न रोचते ममाप्येतदार्ये यद् राघवो वनम्।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत् स्त्रिया वाक्यवशंगता॥
विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः॥
मया पार्श्वे सधनुषा तव गुप्तस्य राघव।
कः समर्थोऽधिकं कर्तुं कृतान्तस्येव तिष्ठतः॥ 21/2-3, 9

बड़ी माँ! मुझे भी यह अच्छा नहीं लगता कि भैया राजलक्ष्मी का त्याग करके वन में जाएँ। महाराज तो इस समय स्त्री की बातों में आ गए हैं। उलटी बुद्धिवाला वृद्ध, विषयों में ग्रस्त राजा कामदेव के वशीभूत हुआ कैकेयी जैसी स्त्री के कहने से क्या नहीं कह सकता। और हे रघुनन्दन! मैं धनुषबाण लेकर आपके पास रहूँगा। तब किसकी शक्ति है कि साक्षात् मृत्यु के समान मेरे रहते आपको हानि पहुँचा सके।

अवसर और आवश्यकता के अनुरूप लक्ष्मण ने एक बात और कही—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥ 13

यदि गुरु भी घमण्ड में आकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक खो बैठे और कुमार्ग पर चलने लगे तो उसे भी दण्ड देना आवश्यक हो जाता है।

> धर्मज्ञ इति धर्मिष्ठ धर्मं चीरतुमिच्छसि।
> शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ॥ 23
> यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम्।
> त्वां साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ॥ 25

धर्मिष्ठ ! तुम धर्म के जानने वाले हो, इसलिए यदि तुम धर्म का पालन करना चाहो तो यहीं रहकर मेरी सेवा करो और इस प्रकार उत्तम सर्वोत्तम धर्म का पालन करो। जैसे तुम्हारे लिए पिता पूज्य हैं वैसे **गौरव के कारण मैं अधिक पूज्य हूँ। मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती, इसलिए यहाँ से वन को नहीं जाना चाहिए।**

इस पर राम ने अपना निश्चय लक्ष्मण से इन शब्दों में बतला दिया—

> सोऽहं न शक्यामि पितुर्नियोगमतिवर्तितुम्।
> पितुर्हिवचनाद्वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥ 43

हे वीर ! मैं पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। पिता के आदेश से ही कैकेयी ने मुझे यह बात कही थी। राम का यह कथन नितान्त मिथ्या है। न कहीं दशरथ ने स्वयं राम को वन जाने के लिए कहा और न कैकेयी को ही आदेश दिया कि वह दशरथ की ओर से यह बात राम से कह दे। कैकेयी ने राम के उसके पास जाने पर यह अवश्य कहा था कि 'इनके (राजा के) मन में कोई बात है जिसको यह तुम्हारे भय से नहीं कहते।' कैकेयी ने यह भी कहा कि 'शुभ या अशुभ जो भी राजा कहेंगे उसे तुम पूरा करने का वचन दो तो मैं तुम्हें बता दूँ' (18/20, 25)। स्पष्ट है कि शुभ या अशुभ राजा ने अभी कहना था जो कि उन्होंने कभी कहा नहीं। राजा ने इससे इनकार नहीं किया कि उन्होंने दो वर देने की बात कही थी। परन्तु जब कैकेयी ने अभीष्ट दो वरों को राजा के सामने प्रस्तुत किया तो उन्होंने एक बार भी उन्हें देना स्वीकार नहीं किया।

कौशल्या भी अपने निश्चय पर अडिग थी, इसलिए अपनी बात दुहराते हुए कहा—

> यथैव ते पुत्र पिता तथाहं गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तया च।
> न त्वानुजानामि न मां विहाय सुखदुःखितामर्हसि गन्तुमेनम् ॥ 52

हे पुत्र ! जैसे पिता तुम्हारे गुरु हैं, वैसे ही मैं भी हूँ। मुझ दुखिया को इस प्रकार असहाय छोड़कर पालनादि मातृधर्म के भी विरुद्ध है। इसलिए **मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती।** माँ बेटे की नोक-झोंक काफी देर तक चलती रही।

अन्ततः राम ने पत्नी पर पति के अधिकार का वास्ता देकर माता को विवश कर दिया। इस पर भी कौशल्या ने जो कहा, वह इस प्रकार था—

गमने सुकृतां बुद्धि न ते शक्नोमि पुत्रक।
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः।
गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तुसदा विभो॥
कृतान्तस्य गतिः पुत्र दुर्विभाव्या सदा भुवि।
यस्त्वां संचोदयति मे वच आच्छिद्य राघव॥

24/32, 33, 35, 36

न शक्यसे वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम।
शीघ्रं च निवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे॥ 25/2

हे प्रिय पुत्र राम! गमन के लिए दृढ़ निश्चय वाली तेरी बुद्धि को मैं रोक नहीं सकती, क्योंकि काल बहुत बलवान् है। इसलिए तुम जाओ, प्रभु तुम्हारा सदा कल्याण करे। संसार में भाग्य की गति सदा दुर्विज्ञेय है। वही भाग्य तुझे मेरी बात को काटकर तुझे वनगमन के लिए प्रेरित कर रहा है। इसलिए अब तुम जाओ। हे रघुकुल श्रेष्ठ! अब तुम रोके नहीं जा सकते, इसलिए अब जाओ और शीघ्र लौटकर आओ।

एक बार फिर राम को वनवास में जाने से रोकने का यत्न किया—

प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः।
उवाच राजा संप्रेक्ष्य वनवासाय राघवम्॥
अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायास्त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥
न चैतन्मे प्रियं पुत्र शपे सत्येन राघव।
छन्नया चलितस्त्वमस्मि स्त्रिया छन्नाग्निकल्पया॥

34/25, 26, 36

वनवास के लिए (पिता की) आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए रामचन्द्र को व्याकुलता-रहित देखकर दशरथ बोले—"रामचन्द्र! कैकेयी ने वरदान के द्वारा मुझे मोहित कर लिया है। (इस कारण) मुझे कैद में डालकर आज तुम्हीं राजा बन जाओ। हे राम! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारा वन जाना मुझे प्रिय नहीं है। पर राख से ढकी अग्नि के समान कुटिल अभिप्राय वाली कैकेयी के कारण मैं विचलित हो गया।" राम को वन जाने से विरत करने के लिए जो व्यक्ति इस हद तक जा सकता था वह उसे वन जाने का आदेश कैसे दे सकता था?

अन्ततः वन को प्रस्थान करते हुए राम ने सर्वथा स्पष्ट शब्दों में कह दिया था—

अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव।
मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये ॥ 34/50

कैकेयी ने मुझसे याचना की कि "राम ! तुम वन को चले आओ" इस पर मैंने वचन दिया था कि 'अवश्य जाऊँगा।" अपने उस वचन का पालन मुझे करना है। राम के इस वक्तव्य के बाद इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि "राम पिता के आदेश से नहीं, कैकेयी के आदेश से ही वनवास के लिए गये थे और वह भी दशरथ के कैकेयी को दिये गये वचन का पालन करने के लिए नहीं, अपितु **कैकेयी को दिये गये अपने वचन का पालन करने के लिए।**

राम संवैधानिक शासक थे। राजा के पद पर उनकी नियुक्ति दशरथ ने नहीं, दशरथ के प्रस्ताव पर जनता के प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से की थी। नियुक्ति करने वाले को ही पदच्युत करने और उसके स्थान पर किसी अन्य को नियुक्त करने का अधिकार होता है। राम उसे हटाकर भरत को राजा बनाने के दशरथ के अधिकार को चुनौती दे सकते थे। शायद यही सोचकर दशरथ ने कैकेयी की इस माँग को स्वीकार नहीं किया।

राज्य दशरथ की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी। वह जनता (प्रजा) की धरोहर थी। राजा को उसे स्वेच्छापूर्वक किसी की झोली में डालने का अधिकार नहीं था। प्रश्न उठता है कि जब राजा के रूप में दशरथ ने कैकेयी की माँग को स्वीकार नहीं किया और पिता के रूप में वह राम के वियोग को सहन नहीं कर सकते थे। प्रजा राम के साथ थी। रघुकुल के पुरोहित महर्षि वसिष्ठ का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त था। फिर उन्होंने राज्य का परित्याग करके वन की राह क्यों पकड़ी ? इसका एकमात्र कारण यह प्रतीत होता है कि यदि वे ऐसा न करते तो गृहयुद्ध अवश्यंभावी था जो विश्वयुद्ध का भी रूप धारण कर सकता था। परिवार को, देश को और अन्ततः विश्व को इस विभीषिका से बचाने के लिए उन्होंने यही उचित समझा होगा।

अंगद का पाँव

किसी शत्रुदेश पर आक्रमण करने से पूर्व वहाँ के राजा के पास अपना दूत भेजकर युद्ध को टालने का प्रयास सदा सर्वत्र किया जाता रहा है। महाभारत युद्ध से पूर्व दुर्योधन के दरबार में स्वयं श्रीकृष्ण का पाण्डवों की ओर से दूत बनकर जाना सर्वविदित है। यह भी सब जानते हैं कि उस युद्ध का उपक्रम तभी हुआ था जब दुर्योधन ने 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव' कहकर श्रीकृष्ण को खाली हाथ लौटा दिया था।

लंका में राम और रावण के बीच हुए युद्ध के विषय में महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है—'रामरावणोर्युद्धं रामरावणयोखि' अर्थात् राम और रावण के बीच ऐसा युद्ध हुआ जैसा राम और रावण के बीच हुआ था। अर्थात्—वैसा युद्ध दूसरा कोई नहीं हुआ, इसलिए उसकी उपमा उसी से दी गई है। ऐसे भीषण युद्ध को टालने का प्रयास न किया जाता, यह कैसे हो सकता था? मन्त्रिपरिषद् में इस विषय में विचार हुआ। जाम्बवान् ने इस कार्य के लिए बालिपुत्र अंगद का नाम प्रस्तुत किया। यही अच्छी सलाह सबको पसन्द आई। बुद्धि, बल और गुणों की दृष्टि से अंगद से बढ़कर कोई नहीं था। उसके लंका में रावण के सम्मुख पहुँचने पर दोनों में बहुत देर तक नोक-झोंक होती रही। अन्ततः अंगद ने सभा के बीच अपना पाँव जमा दिया और घोषणा कर दी—

जौ मम चरन सकसि सठ टारी।
फिरहिं राम सीता मैं हारी॥ लंका51/5

अरे दुष्ट! जो तू मेरा पाँव हटा दे तो रामचन्द्र जी लौट जाएँगे और मैं सीता जी को हार जाऊँगा।

सीता तो स्वामी राम की पत्नी थी। अंगद को परस्त्री को हारने का क्या अधिकार था? इससे पहले पाँचवीं चौपाई में अंगद ने कहा था—

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥

मैं तेरे दाँत तोड़ने लायक हूँ, पर क्या करूँ, रघुनाथ जी ने मुझे आज्ञा नहीं दी है। रावण के दाँत तोड़ने के लिए अंगद को राम की आज्ञा दरकार थी, पर राम की पत्नी को हारने के लिए नहीं। बड़ी विचित्र बात है। पर न अंगद का पाँव हटा और न राम लौटे। सीता जहाँ की तहाँ रही।

वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का कोई उल्लेख नहीं है।

हनुमान का पहाड़ उठा लाना

रणभूमि में रावण द्वारा फेंकी गई शक्ति से आहत होकर लक्ष्मण का मरणासन्न हो जाना और हनुमान द्वारा लाई गई संजीवनी नामक ओषधि से स्वस्थ हो जाना सर्वविदित है। परन्तु इससे पूर्व हुई इसी प्रकार की दुर्घटना का ज्ञान प्रायः लोगों को नहीं है। एक दिन इन्द्रजित् (मेघनाद) ने ब्रह्मास्त्र का आश्रय लेकर समूची वानर सेना को अचेत कर दिया। अचेत होने वालों में राम और लक्ष्मण भी थे। जाम्बवान् कुछ होश में थे। विभीषण और हनुमान उनके पास पहुँचे और उन्हें इस स्थिति से अवगत कराया। तब जाम्बवान् ने हनुमान् से कहा कि तुम वानर सेना को बचा सकते हो, क्योंकि तुम सागर के ऊपर सुदीर्घ मार्ग से जाकर हिमालय तक पहुँच सकते हो। वहाँ तुम ऋषभ नामक उत्तम पर्वत और कैलाश शिखर को देखोगे—

तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम्।
सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥31॥
तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्नि संभवाः।
द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्त्यो दिशो दिशः ॥32॥
मृतसंजीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि।
सावर्ण्यकरणीं चैव सन्धानकरणीं तथा ॥33॥
ताः सर्वा हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि।
आश्वासय हरीन् प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज ॥34॥

हे वीर ! उन दोनों शिखरों के मध्य देदीप्यमान, अनुपम, सर्वौषधियों से युक्त ओषधिशिलाखण्ड को देखोगे। उस ओषधिशिलाखण्ड की चोटी पर उत्पन्न होने वाली चार जाज्वल्यमान ओषधियों को देखोगे। मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी और सन्धानकरणी—इन चार ओषधियों को तुम देखोगे। हे हनुमान, इन ओषधियों को शीघ्र लाने में तुम समर्थ हो। उन ओषधियों को देकर तुम सबको प्राणों से युक्त कर दो।

जाम्बवान् के वचनों से प्रोत्साहित होकर हनुमान् हिमालय पर जा पहुँचा—

स तं समीक्ष्यानलरश्मिदीप्तं विसिष्मिये वासवदूतसूनुः।
आवृत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रं तत्रौषधीनां विचयं चकार ॥62॥

ततो महात्मा निपपात तस्मिञ्शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये ।
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाभिवाद्य विभीषणं तत्र च सस्वजे च ॥72॥
तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥73॥
युद्ध० सर्ग 74

वह हनुमान उस पर्वत को देखकर चकित हो गया और जल्दी-जल्दी ओषधियों का चयन करने लगा। इसके पश्चात् वह उस उत्तम पर्वत पर वानरों के बीच उतरा और वरिष्ठ वानरों का अभिवादन करके विभीषण से गले मिला। महौषधियों की गन्ध को सूँघ कर राम-लक्ष्मण और अन्य सभी पीड़ामुक्त हो गये ।

कुछ समय बाद एक बार फिर वैसी ही घटना घटी। इस बार रावण ने लक्ष्मण को लक्ष्य करके शक्ति का प्रयोग किया। यह शक्ति इतनी भयानक थी कि लक्ष्मण के शरीर को भेदकर भूतल में घुस गई थी। लक्ष्मण को सर्प के समान छटपटाता देखकर राम धैर्य खो बैठे और कह दिया—"जबकि मैं भाई लक्ष्मण को मरा हुआ देख रहा हूँ तो अब न मेरा युद्ध से प्रयोजन है, न राज्य से, न सीता से और न अपने प्राणों से। तब राम को धैर्य देते हुए सुषेण बोले—

न मृतोऽयं महाबाहो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ।
न चास्य विकृतं वक्त्रं नापि श्यामं न निष्प्रभम् ॥
सर्ग 102, 15॥
एवं न विद्यते रूपं गतासूनां विशां पते ।
दीर्घायुषस्तु ये मर्त्यास्तेषां तु मुखमीदृशम् ॥17॥

हे महाबाहो ! यह लक्ष्मण मरा नहीं है। इसका मुख न विकृत हुआ है, न काला पड़ा है और न प्रभाहीन हुआ है। प्राणरहित मनुष्य का रूप ऐसा नहीं होता। जो मनुष्य दीर्घजीवी होते हैं उनका रूप ऐसा होता है।

तब सुषेण पास खड़े हुए हनुमान से बोले—

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा शैलमौषधिपर्वतम् ।
पूर्वं ते कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता शुभः ॥21॥
दक्षिणे शिखरे तस्य जातमोषधिमानय ।
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा ॥22॥
संजीवनीमपि वीर सन्धानीं च महोषधम् ।
संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय ॥23॥
इत्येवमुक्तो हनुमान् गत्वा चौषधिपर्वतम् ।
चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्तां महौषधीम् ॥24॥

तस्य बुद्धिःसमुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः ।
इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः ॥25॥

हे सौम्य वीर ! यहाँ से शीघ्र ओषधिपर्वत पर जाओ जिसके विषय में तुम्हें पहले जाम्बवान् ने बताया था। उसके दक्षिण शिखर पर उत्पन्न ओषधि ले आओ। वहाँ पर उगी विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवनी तथा सन्धानी नाम से प्रसिद्ध महौषधियों को यहाँ ले आओ। उन्हीं से लक्ष्मण के जीवन की रक्षा होगी।

[विशल्यकरणी=शरीर में धँसे हुए बाण आदि को निकाल कर घाव को भरने और पीड़ा दूर करने वाली; सावर्ण्यकरणी=शरीर की त्वचा की पहले जैसी रंगत लाने वाली; संजीवनी=मूर्च्छा दूर कर चेतना प्रदान करने वाली और सन्धानी=टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाली]

उनके ऐसा कहने पर हनुमान ओषधि पर्वत पर जा पहुँचे। पर उन ओषधियों को न पहचानने के कारण चिन्ता में पड़ गये। तब उन्होंने सोचा कि क्यों न इस पर्वत शिखर को ही ले चलूँ। और तब वे उस पर्वत शिखर को उखाड़ कर ले आये।

पर्वत को उठाकर लाना संभव नहीं। काव्यशास्त्र का सिद्धान्त है—'मुख्यार्थबाधे लक्षणा'—जहाँ मुख्य अर्थात् प्रसिद्ध अर्थ संभव नहीं होता वहाँ लक्षणा से काम लिया जाता है। पति के एक साथ ढेर सारी सब्जियाँ ले आने पर पत्नी के इस कथन को कि आज तो आप सारी सब्ज़ी मण्डी ही उठा लाये अक्षरशः कौन मान सकता है? जब पहली बार हनुमान ओषधिपर्वत पर इन्हीं ओषधियोंको लेने गये तो वहाँ लिखा है—'तत्रौषधीनां निचयं चकार' वहाँ हनुमान ने औषधियों का चयन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि हनुमान को जब सन्तोष नहीं हुआ तो उन्होंने आस-पास की मिलती-जुलती ओषधियों का संग्रह करके बड़ी-बड़ी गठरियाँ बाँध ली होंगी। वहाँ यह भी लिखा है कि लंका से हिमालय की दूरी एक हजार योजन अर्थात् लगभग पाँच हज़ार मील थी। आपातकाल (Emergency) में दस हज़ार मील की दूरी और फिर तीस हजार फीट की चढ़ाई विमान द्वार संभव थी। और जैसाकि हम पहले लिख चुके हैं कि जैसे आज सैकड़ों यात्रि को ले जाने वाले बड़े-बड़े विमानों के अतिरिक्त हैलीकोप्टर जैसे छोटे-छो विमान हैं, वैसे ही उस समय भी पुष्पक विमान जैसे विमानों के अतिरिक्त बड़े-बड़े लोगों के पास छोटे-छोटे विमान थे। ऐसे ही छोटे विमान से हनुमान ने यह यात्रा की होगी और उसी पर बड़े परिमाण में जड़ी-बूटियाँ लाद कर लाये होंगे। इसी को प्रौढ़ोक्ति अथवा अर्थवाद के रूप में पर्वत उठाकर लाना कह दिया होगा। एक बात और—जब एक बार हिमालय से ओषधि पर्वत ले आया था तो युद्ध के चलते हनुमान उसे हिमालय पर वापस क्यों रख आया?

□□